विवेक-शिखा
श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी
नवम्बर-१९९८
कृष्ण निलयम्,
प्रकाश नगर, छपरा (बिहार)
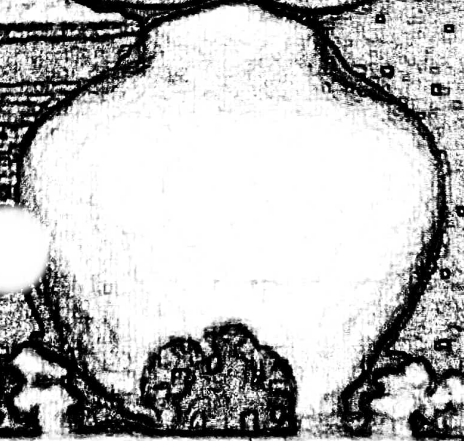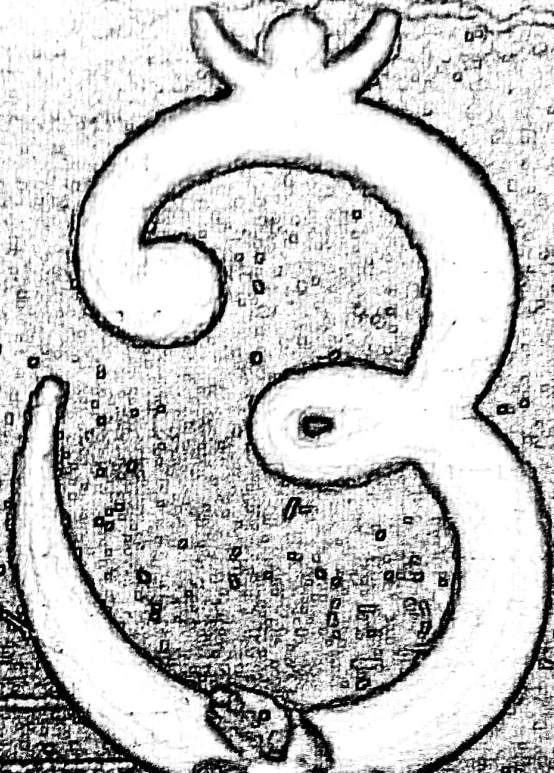
विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१७१. श्री धन्नालाल अमृतलाल सोलंकी, कलवानी
१७२. डॉ० कमलाकांत, बड़ोदा (गुजरात)
१७३. डॉ० विनुया पेण्डसे, उदयपुर (राजस्थान)
१७४. सन्तोष सोनी, रामवन (जम्मू एवं कश्मीर)
१७५. श्री राजीभाई बी० पटेल, सूरत (गुजरात)
१७६. श्री प्रकाश देवपुरा—उदयपुर (राजस्थान)
१७७. श्री एस० के० मुन्दरा, जामनगर (गुजरात)
१७८. डॉ० मोहन बन्सल, आनन्द (गुजरात)
१७९. अडकिया कन्सलटेन्ट्स, प्रालि० मुम्बई
१८०. सुश्री एस० पी० त्रिवेदी—राजकोट (गुजरात)
१८१. अद्वैत आश्रम, मायावती—(उ० प्र०)
१८२. श्री शत्रुघ्न शर्मा, फतेहाबाद—(बिहार)
१८३. रामकृष्ण मिशन, शिलांग—(मेघालय)
१८४. श्री त्रिभुवन महतो, राँची—(बिहार)
१८५. रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची—(बिहार)
१८६. श्री आर० के० चोपड़ा, इलाहाबाद—(उ० प्र०)
१८७. श्री श्यामनन्दन सिंह, राँची—(बिहार)
१८८. श्री डी० आर० साहू, रायपुर—(म० प्र०)
१८९. रामकृष्ण मिशन स्कूल, नरोत्तमनगर (अरुणाचल प्र०)
१९०. रामकृष्ण मिशन हॉस्पिटल, इटानगर (अरु० प्र०)
१९१. रामकृष्ण मिशन स्कूल, अलोंग (अरु० प्र०)
१९२. श्री घनश्याम चन्द्राकर, बीधी (म० प्र०)
१९३. श्री भास्कर मढ़रिया, भिलाई (म० प्र०)
१९४. स्वामी चिरन्तनानन्द, रा.कृ.मि.नरोत्तमनगर (अ.प्र.)
१९५. श्री हरवंश लाल पहडा, जम्मूतवी (कश्मीर)
१९६. श्री योगेश कुमार जिन्दल, विवेक विहार (दिल्ली)
१९७. डॉ० अखिलेश अग्रवाल—रुड़की, (उ० प्र०)
१९८. श्री अनिल कु० पूनम चन्द जैन—नागपुर (महा०)
१९९. डॉ० शीला जैन—बीकानेर (राजस्थान)
२००. श्री डी० एन० देशमुख—चन्द्रपुर (महाराष्ट्र)
२०१. श्री योगेश कुमार थलिया—नवलगढ़ (राजस्थान)
२०२. रामकृष्ण विवेकानन्द सेवाश्रम—अम्बिकापुर (म.प्र.)
२०३. श्री ओम भक्त बुदाथोपी—डांग (नेपाल)
२०४. श्री ए० डी० भट्टाचार्य—भद्रकाली (प० बं०)

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१७ नवम्बर—१९९८ अंक—११

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक।
डा० केदारनाथ लाभ
सहायक सम्पादक :
ब्रजमोहन प्रसाद सिन्हा
शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-२२६३९

सहयोग राशि :

आजीवन सदस्य—	७०० रु०
वार्षिक—	५० रु०
रजिस्टर्ड डाक से	६५ रु०
एक प्रति—	५ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्री रामकृष्ण ने कहा है

(१)

गेरुआ वस्त्र पहनने की क्या जरूरत है? वेश में क्या है? गेरुआ वस्त्र पहनने से मन में पवित्र भाव उदित होता है। जैसे, फटी जूती, फटे कपड़े पहनने से मन में दैन्य-दारिद्र्य का भाव आ जाता है; कोट पतलून और बूट पहनने से सहज ही मन में अहंकार-अभिमान उठता है, मलमल की काली किनारीवाली धोती पहनने से फुर्ती आने लगती है और आप ही प्रेमगीत गाने की इच्छा होती है, वैसे ही संन्यासी का गेरुआ वस्त्र पहनने पर मन में सहज ही पवित्र भाव उठने लगते हैं: यद्यपि वेश में कोई विशेष महत्व नहीं है, फिर भी हर प्रकार के वेश का कुछ अपना प्रभाव होता है।

(२)

जब तक सच्चिदानन्द में मन लीन न हो जाए, तब तक उन्हें पुकारना और संसार के काम-काज करना, दोनों बातें चल सकती हैं। उनमें मन तल्लीन हो जाने पर कोई काम करने की आवश्यकता नहीं रहती। जैसे, मानो कोई कीर्तन गा रहा है—'निताई आमार माता हाथी।' ('मेरा नित्यानन्द मतवाला हाथी है।') पहले जब वह गाना शुरु करता है तब गीत के शब्द, राग, ताल, मान, लय सभी बातों पर ध्यान रखते हुए सही ढंग से गाता है। फिर जब गीत के भाव में उसका मन थोड़ा मग्न होता है तब वह सिर्फ 'माता हाथी, माता हाथी' ही कहता है। फिर जब उस भाव में मन और भी तल्लीन हुआ तब सिर्फ 'हाथी, हाथी' ही कहता है। अन्त में जब मन पूरी तरह तल्लीन हो जाता है तब वह 'हा' कहकर ही भावमग्न होकर चुप हो जाता है।

करुणा-जल बरसाओ

—सारदा तनय

(राग—मल्हार : ताल—तीन-ताल)

बरसाओ ऽऽ हे करुणा-घन

करुणा-जल बरसाओ। (अब तो)

ताप-त्रय तपन दहे देह-मन

नाथ शीघ्र सरसाओ॥ ध्रु०

नीरस मरु-सम जीवन में मम

प्रेम-सुधा बरसाओ।

शोकानल से झुलसे हिय को

ठाकुर अब हरसाओ॥ १

चित-चातक दरसन का प्यासा,

प्रभु अब क्यों तरसाओ।

जनम-जनम की आस पुरा दो,

एक झलक दरसाओ॥ (अब तो)

आध्यात्मिक अनुभूति की सत्यता (२)

—स्वामी यतीश्वरानन्द
अनुवादक—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
सम्पादक, वेदान्त केसरी, चेन्नई

धर्म की कसौटियां :

साधना के प्रारम्भ में कोई आध्यात्मिक अनुभूति नहीं होती क्योंकि वह केवल "सफाई" का समय होता है, जब ढेर सारी गन्दगी और बुराइयों को साफ करना पड़ता है। कुछ हद तक मन को बलवान बनाने पर भी अपवित्र विचार मन में उठते हैं, लेकिन तब वे हमें हानि नहीं पहुँचा पाते और आसानी से उन पर विजय पायी जा सकती है। यदि अच्छा और अनुभवी कर्णधार हो तो नौका डूबने के भय के बिना तूफान का सामना कर सकती है। जब तक यह प्रातिभासिक जगत हमारे मन से पूरी तरह पोंछ नहीं दिया जाता, तब तक इच्छाएँ और वासनाएँ आकर्षण और विकर्षणों को उनके सूक्ष्मतम रूपों में नष्ट नहीं किया जा सकता।

तब तक, वासनाएँ मन में भले ही उठें; लेकिन यदि हमने हमारे नैतिक ढांचे को आध्यात्मिक विकास की सहायता से सुदृढ़ किया हो तो हम उनका सामना कर सकेंगे तथा उन्हें दूर हटाने में समर्थ होंगे। नैतिक ढांचे को बलिष्ठ करना अपने आप में आध्यात्मिक प्रगति का लक्षण है। जबतक भगवत् कृपा के आगमन का अनुभव नहीं होता, तबतक हमें संघर्ष करते रहना होगा। आध्यात्मिक जीवन में पुरुषार्थ अपरिहार्य है। अपनी पूर्ण क्षमता से सच्चा प्रयास किये बिना हम कभी सच्चा आत्म समर्पण नहीं कर सकते।

एक यथार्थ प्रकार का दर्शन, तभी संभव है, जब हमारी एक अत्यन्त बलिष्ठ, स्वस्थ, शुद्ध और पवित्र देह हो, जो ऐसे दर्शन के परिणाम स्वरूप होने वाली सभी प्रतिक्रियाओं को वास्तव में झेलने में समर्थ हो। और जब हमारे पास एक पूर्ण पवित्र और निष्काम मन तथा वास्तविक आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि होगी, तभी उनकी सहायता से हम यह अनुभव कर सकेंगे कि हम न देह हैं न मन, न स्त्री हैं न पुरुष बल्कि इन सभी से भिन्न आध्यात्मिक इकाइयाँ हैं।

वास्तविक साकार दर्शन के साथ भी आध्यात्मिक तत्व सदा विद्यमान रहता है, तथा वह चरम सत्ता, बल की महत्ता को प्रतिबिम्बित करता है और याद रखो, अनुभूति रहित अद्वैतवादी होने के बदले अनुभूति सम्पन्न द्वैतवादी होना सदा श्रेष्ठतर है। वास्तविक साकार दर्शन उच्च से उच्चतर आध्यात्मिक स्तरों की ओर जाने वाली एक सीढ़ी है, जब कि अनुभूति रहित सैद्धान्तिक अद्वैतवाद तुम्हें कहीं भी नहीं ले जाता। अद्वैतवादी का निराकार बहुत दूर की बात है, और हमारा प्रयोजन अधिक से अधिक विशिष्ट द्वैतवाद से है, जिस मत के अनुसार हम सभी अनन्तपूर्ण सत्ता के अंश हैं। सभी इन्द्रियों के शान्त और पूर्ण संयत होने पर तथा मन के भी उसी स्थिति को प्राप्त होने पर ही वास्तविक दर्शन संभव है, अन्यथा नहीं।

उत्तेजित मस्तिष्क में होने वाले संभ्रम और सच्चे दर्शन में महान अन्तर है। एक कसौटी यह है कि वास्तविक आध्यात्मिक अनुभूति से हमें अधिक पवित्रता, अधिक वैराग्य, शुद्धता और

एकाग्रता प्राप्त होती है। हमारी शरणागति की भावना में वृद्धि होती है, तथा जीवात्मा का परमात्मा के साथ तादात्म्य स्थापित हो जाता है। श्रीरामकृष्ण कहा करते थे, "भगवत् कृपा की वायु सदा बह रही है, तुम्हें केवल पतवार खोल देना है।

एक बार अतीन्द्रिय सत्ता की झलक पा जाने के बाद भक्त हवा के बारे में,—वह गर्म हवा है, या ठंडी है, या हवा है ही नहीं—और अधिक चिन्ता नहीं करता। वह जानता है कि भगवत्-शक्ति का प्रवाह उसे सही दिशा में आगे ले जा रहा है,

सही दर्शनों की दो और कसौटियाँ हैं : आनन्द और निश्चितता। सच्ची आध्यात्मिक अनुभूति वर्णनातीत आनन्द शान्ति और पूर्णता का बोध प्रदान करती है। तब हम आन्तरिक रूप से उसे सत्य जानते हैं, क्योंकि उसके साथ अपना ही एक असंदिग्ध प्रकाश और निश्चितता होती है। पूर्ण पवित्र, ब्रह्मचर्ययुक्त तथा सुसंयत जीवन यापन करने वाले झूठे दर्शनों से आसानी से भ्रमित नहीं किये जा सकते। सच्ची आध्यात्मिक अनुभूति अपने आप में प्रमाण है।

लेकिन बहुत से अति-उत्साही साधक प्रारंभ में झूठी ज्योति-दर्शन से भ्रमित हो जाते हैं। वे कैसे निर्णय करें कि वे सही पथ पर अग्रसर हो रहे हैं? वेदान्त के अनुसार आध्यात्मिकता की तीन कसौटियाँ हैं : श्रुति, युक्ति और अनुभूति। इसको बृहदारण्यक उपनिषद् के प्रसिद्ध अंश में व्यक्त किया गया है : ...आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयि... (बृ० उप० २. ४, ५, तथा ४, ५, ६,). अर्थात् आत्मा के बारे में सुनना चाहिये, उस पर मनन करना चाहिये, उसका अन्वेषण करना चाहिये और अन्त में उसकी अभूनुति होनी चाहिये। सिद्ध आचार्य अथवा शास्त्र के मार्ग-दर्शन के रूप में हमें सबसे पहली बड़ी सहायता प्राप्त होती है। कर्तव्य के रूप में शास्त्रों को पढ़ना पर्याप्त नहीं है। उनमें निहित अर्थ पर गहराई से चिन्तन करना चाहिये, तथा सत्य के साक्षात्कार की संभावना के विषय में दृढ़ निश्चय करने का प्रयत्न करना चाहिये। एक सद्गुरु के द्वारा उपदेश प्राप्त करते ही वास्तविक उत्तम अधिकारी शिष्य को तत्काल एक क्षण में सत्य का साक्षात्कार होता है, इस दृढ़ोक्ति में सत्य है। लेकिन साधक को पहले कठोर नैतिक आचरण द्वारा उत्तम अधिकारी बनना चाहिये।

आध्यात्मिक जीवन में ध्यान देने की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि व्यक्ति सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता है। तथाकथित अन्ध-विश्वास धार्मिक जीवन का मापदण्ड नहीं हो सकता। किसी धर्म-मत को अंगीकार करना धर्म नहीं है। जैसा कि पाश्चात्य देशों में समझा जाता है। धर्म अनुभूति का विषय है। धार्मिक सत्यों को अपने जीवन में सत्यापित किया जाना चाहिये—एक बार ही नहीं, बल्कि बार-बार प्रमाणित किया जाना चाहिये। सत्य की थोड़ी सी झलक पर्याप्त नहीं है, पर हाँ, वह कुछ नहीं से तो श्रेष्टतर है। यही नहीं, हमारी आध्यात्मिक अनुभूतियों का शास्त्रों के साथ मिलान करना चाहिये।

अन्त में श्रुति और अनुभूति दोनों पर युक्ति का प्रयोग करना चाहिये। इससे शास्त्रों द्वारा प्राप्त विचार स्पष्टतर ही नहीं होते बल्कि हमारे अपने बारे में ज्ञान का भी विस्तार होता है। आत्म-विश्लेषण सर्वश्रेष्ठ प्रकार का विचार है। इस संसार में क्या नित्य है, क्या अनित्य, अस्थायी है, यह निर्णय करने के लिये भी युक्ति का उपयोग किया जा सकता है। लेकिन शास्त्र अथवा प्रज्ञालोक के आधार रहित शुद्ध युक्तिवाद का परिणाम संशयवाद हो सकता है, तथा इससे मानव की

आध्यात्मिक सम्भावनाएँ नष्ट हो सकती हैं। अपनी बुद्धिमत्ता के गर्वीले व्यक्ति की व्यक्तिगत दुर्घटना अवश्यभावी है।

तात्पर्य यह है कि शास्त्र, अनुभूति और युक्ति आध्यात्मिक जीवन की त्रिविध कसौटियाँ हैं, और सभी साधकों को सभी अवस्थाओं या स्तरों पर इन कसौटियों का प्रयोग करना चाहिये।

एक सच्चा, निष्ठावान और सजग साधक अपने आसपास की प्रत्यक वस्तु से शिक्षा ग्रहण करता है। उसके जीवन का प्रत्यक क्षण उसके लिये सत्य और मिथ्या के बीच चयन का क्षण होता है। प्रत्येक साधक को सदा पूर्ण-सजग रहना चाहिये तथा अपने हृदय मे विवेकाग्नि को सदा प्रज्ज्वलित रखना चाहिये। कोई भी विचार, कोई भी घटना उसकी दृष्टि से अलक्षित नहीं रहनी चाहिये। ऐसे व्यक्ति के लिये समग्र ब्रह्माण्ड ज्ञान की एक महान पुस्तक है।

स्वप्न और सत्य

स्वप्न क्या है? एक छोटे बालक ने अपनी माँ से एक स्वप्न के बारे में कहा जो उसने देखा था। इस पर उसकी माँ ने पूछा, "बेटा, स्वप्न क्या है?" बच्चे ने उत्तर दिया; "सोते समय दिखने वाला सिनेमा।" स्वप्न कई प्रकार के होते हैं: कुछ अर्थहीन होते हैं, कुछ हमारी इच्छाओं के प्रतिबिम्ब होते हैं, तथा कुछ में उच्चतर आध्यात्मिक अर्थ होता है। कुछ स्वप्नों का अतीत से, यहाँ तक कि हमारे पूर्व-जन्मों के साथ सम्बन्ध होता है। हमारे कुछ स्वप्नों का अध्ययन करने पर हम पायेंगे कि उनमें होने वाली कुछ घटनाएं और उनमें मिलने वाले कुछ लोग वर्तमान जीवन के नहीं हैं। कुछ स्वप्नों का सम्बन्ध भविष्य से होता है। १९४० में जब मैं स्वीडन में था, मैं एक दिन इस बोध के साथ जगा कि मुझे देश से २०० फ्रैंक बाहर भेज देना चाहिये और मैंने ऐसा ही किया। कुछ दिनों बाद युद्धकालीन तात्कालिक व्यवस्था के रूप में एक कानून बना कि उस देश से केवल थोड़ी मात्रा में ही धन निकाला जा सकता है। अब्राहम लिंकन को हत्या द्वारा अपनी मृत्यु का स्पष्ट स्वप्न हुआ था, जो उन्होंने दूसरों को बताया था।

कुछ स्वप्न हमारी छुपी इच्छाओं और वासनाओं के द्योतक होते हैं। कई स्वप्न सांकेतिक होते हैं। उनकी व्याख्या आवश्यक होती है। महानतम आधुनिक मनोविज्ञों में से दो, फ्रायड और युंग ने स्वप्नों को बहुत महत्व दिया है क्योंकि उनसे रोगी की मानसिक अवस्था का पता चलता है। परन्तु उनकी व्याख्याएं सर्वदा सत्य नहीं होती थीं। विशेषकर फ्रायड इस विचार से ग्रस्त थे कि सभी स्वप्न दमित काम-वासना की अभिव्यक्तियाँ हैं। यह बिलकुल सत्य नहीं है, लेकिन अपने स्वप्नों का अध्ययन करना तथा अपने मन के क्रियाकलापों के बारे में कुछ जानकारी प्राप्त करना लाभदायक है। अपने स्वप्नों का अध्ययन करने पर हम अपने व्यक्तित्व के एक भिन्न पक्ष को प्राप्त करते हैं। हम उतने अच्छे नहीं हैं, जितना हमने अपने आप को समझा था। कुछ स्वप्न हमारे अत्यन्त बुरे पक्ष को प्रकट करते हैं। लेकिन यह भयभीत होने का कोई कारण नहीं है। अपने बारे में सत्य की जानकारी से तुम्हें और अधिक बलवान तथा अपने दोषों पर विजय प्राप्त करने के लिए अधिक कृतसंकल्प होना चाहिए।

प्रायः स्वप्न चेतना की गहरी परतों से उत्पन्न होते हैं। ऐसा कहा जाता है कि रॉबर्ट लु स्टिवेन्सन ने "डा. जेकल और मिस्टर हाईड" नामक प्रसिद्ध कथा लिखने के पूर्व उसका स्वप्न देखा था। उन्नीसवीं सदी के प्रसिद्ध जर्म

रसायनशास्त्री केकूले ने बेन्जोन की बनावट का आविष्कार स्वप्न में किया था। एक रात जब वे अंगीठी के पास ऊँघ रहे थे, उन्होंने विभिन्न बनावटों के फार्मूलों को अपनी आँखों के सामने तैरते देखा। अचानक उन्होंने देखा कि कुछ, एक संवृत्त-चक्र की आकृति के हैं, मानो दो साँप एक दूसरे की पूँछ निगलने का प्रयत्न कर रहे हों। वे जाग उठे और बची हुई सारी रात बेन्जीन की वृत्तात्मक बनावट तथा अनुकम्पन के सिद्धान्त को निष्पन्न करने में बिताई।

कुछ स्वप्न जीव की गहरी आध्यात्मिक आकांक्षाओं को प्रकट करते हैं। एक रात को स्वप्न में मैंने अपने गुरुदेव स्वामी ब्रह्मानन्द जी को पत्र में लिखा, "मैं सभी में परमात्मा का दर्शन करने का प्रयत्न कर रहा हूँ।" स्वप्न में ही उन्होंने उत्तर दिया, "प्रत्येक अंश में पूर्ण को देखने का प्रयत्न करो। सभी ससीम वस्तुओं में असीम को देखने का प्रयत्न करो।" कई दिनों तक यही मेरे ध्यान का विषय रहा था।

फिर आध्यात्मिक स्वप्न भी होते हैं जिनमें महान आध्यात्मिक सोच उद्घाटित होते हैं। स्वप्न में व्यक्ति को मन्त्र प्राप्त हो सकता है, अथवा दिव्य दर्शन हो सकता है। स्वप्न में प्राप्त मंत्र प्रायः गुरु-प्रदत्त मन्त्र ही होता है। माँ सारदा तथा श्रीरामकृष्ण के शिष्यों के जीवन में हमें इसके अनेक दृष्टान्त प्राप्त होते हैं। स्वप्न में भगवान् के रूप का दर्शन आध्यात्मिक जीवन में कठिन संघर्ष कर रहे साधक के लिए बहुत उत्साह-वर्धक हो सकता है। उस अनुभव का आनन्द बहुत दिनों तक भले ही बना रहे, लेकिन यदि वह जाग्रतावस्था में उचित ध्यान तथा नैतिक शुद्धि की प्रेरणा प्रदान न करे, तो उससे साधक को कोई लाभ नहीं होता। कोई अनुभूति, जबतक वह चेतनावस्था में न हो, तबतक उसका बहुत कम आध्यात्मिक मूल्य है।

हमें उस ज्योति को अधिक महत्व देना चाहिए जिससे स्वप्नद्रष्टा स्वप्न देखता है। बृहदारण्यक उपनिषद् में इस अन्तर्ज्योति के विषय में एक अपूर्व वार्तालाप है। एक बार महर्षि याज्ञवल्क्य राजा जनक के दरबार में गए। राजा ने उनसे मानव जिस ज्योति की सहायता से कर्म करता तथा वस्तुओं को देखता है, उसके बारे में प्रश्नावली की। याज्ञवल्क्य ने समुचित उत्तर दिए। उन्होंने पहले कहा कि सूर्य मानव के लिए ज्योति का कार्य करता है। सूर्यास्त होने पर चन्द्रमा, चन्द्रास्त होने पर अग्नि और अग्नि के प्रशमित होने पर ध्वनि,—ये एक के बाद एक मानव के लिए ज्योति का काम करते हैं। अन्त में राजा जनक ने पूछा, "सूर्य और चन्द्रमा दोनों के अस्त होने पर, अग्नि के शान्त होने पर और ध्वनि के भी बन्द हो जाने पर, हे, याज्ञवल्क्य मानव की ज्योति क्या है? महर्षि ने उत्तर दिया : आत्मा ही मनुष्य की ज्योति है। (बृहदारण्यक उपनिषद्—४-३, २-६) दूसरी ज्योतियाँ बाहरी हैं, तथा मानव को उसकी जाग्रतावस्था में ही सहायता कर सकती हैं। लेकिन स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था में मानव आत्मा के प्रकाश से जानता और आनन्द प्राप्त करता है। वह किसी के द्वारा प्रकाशित नहीं होती, परन्तु अन्य सबको प्रकाशित करती है। ब्रह्मज्ञान की अवस्था में यह ज्योति अपने आप प्रकाशित होती है।

आधुनिक मानव सुषुप्ति को विश्राम का काल ही मानता है। पाश्चात्य में गहरी निद्रा कभी भी दार्शनिक अनुसन्धान या अन्तर्निरीक्षण का विषय नहीं रही है। लेकिन उपनिषदों में हम सुषुप्ति-अवस्था के विषय में बहुत गंभीर चिन्तन प्राप्त करते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है :

जिस प्रकार बाज या चील आकाश में उड़ने के बाद थान्त होने पर अपने पंखों को समेटकर नीड़ की ओर आता है, उसी प्रकार आत्मा उस

अवस्था के लिये धावित होती है, जहाँ सुषुप्ति में वह न तो कोई कामना करती है, और न ही कोई स्वप्न देखती है।" (बृ. उप. ४:३:१९)

इसी उपनिषद् में आगे कहा गया है कि सुषुप्ति अवस्था में "पिता पिता नहीं रहता, माता माता नहीं रहती, एक हत्यारा हत्यारा नहीं रहता, एक संन्यासी संन्यासी नहीं रहता।" (४:३:२२) उस अवस्था में व्यक्ति, देखता, सुनता, चखता अथवा बोलता नहीं है, क्योंकि इन सभी क्रियाओं के लिए एक दूसरी वस्तु की आवश्यकता है। जबकि गाढ़ निद्रा में जीव अनन्त परमात्मा के साथ एक हो जाता है, और विशुद्ध आनन्द का अनुभव करता है। तब फिर विशाल जलराशि की तरह एक अखंड चैतन्य विद्यमान रहता है। (४:३:३२) यह अवस्था मुक्ति की निकटतम स्थिति है, लेकिन इन दोनों के बीच एक महान अन्तर है। गहरी निद्रावस्था में जीव निःसंदेह अविमिश्रित आनन्द का उपभोग करता है लेकिन इतना होते हुए भी वह अज्ञान और बन्धन में रहता है। नींद से जागने पर वह अपनी पुरानी अवस्था प्राप्त कर सभी पुराने दुःख और ससीमताओं का अनुभव करता है। हमें गहरी सुषुप्ति के अनुभव को सचेतन रूप से प्राप्त करना चाहिए।

सेन्-फ्रांसिसको के एक रविवासरीय स्कूल की एक अध्यापिका अपने क्लास के छोटे बच्चों को यह कह रही थी कि सभी मनुष्य भगवान की सन्तानें हैं। एक छोटे बच्चे ने पूछा, "अल्कटरा जेल के बुरे लोग भी क्या भगवान की सन्तानें हैं?" अध्यापिका असमंजस में पड़कर कुछ समय तक मौन रही। तब एक चतुर छोटी बच्ची ने उत्तर दिया, "हाँ, वे भी भगवान की सन्तानें हैं, लेकिन वे यह जानते नहीं हैं।" सुषुप्ति में हम भगवान के साथ एकरूप हो जाते हैं, लेकिन जागने पर हमें इस बात का पता नहीं रहता। अपने दैवी स्वरूप को भूलकर हम हरसंभव मूर्खतापूर्ण आचरण करते रहते हैं। अपने स्वरूप को भूल जाने कारण हम इस संसार में आये हैं, जो एक जेलखाने के समान है। गहरी निद्रा के कुछ अंश को उसकी सी स्थिति को, प्रयत्नपूर्वक अपने ध्यान के समय बनाना चाहिए। आध्यात्मिक अनुभूति से हमें सुषुप्ति का पूर्ण विश्राम, शान्ति और आनन्द प्राप्त होता है, और साथ ही परमज्ञान, पवित्रता और पूर्णता भी।

एक बार श्रीरामकृष्ण के महानतम शिष्यों में से एक, स्वामी प्रेमानन्द बेलुर मठ के देवालय में ध्यान कर रहे थे। शीघ्र ही वे समाधिस्थ हो गये। एक नवीन ब्रह्मचारी ने उन्हें जाग्रत करने का प्रयत्न किया, लेकिन वह असफल रहा। बहुत समय बाद जब स्वामी प्रेमानन्द सामान्य चेतनावस्था में लौट आये, तब उस अनभिज्ञ युवक ने उनसे पूछा, 'महाराज, क्या आप सो गये थे?" महान स्वामी ने एक बंगाली भजन को गाते हुए उत्तर दिया, "मैंने निद्रा को निद्रित कर दिया है।" (स्वामी गंभीरानन्द कृत श्रीरामकृष्ण भक्तमालिका ...)

वे जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति के परे अतिचेतनावस्था में चले गये थे। स्वामी तुरीयानन्द ने अपनी निद्रा-जय के बारे में कहा था। वे निद्रा को "देखना" चाहते थे। सभी विचारों को शान्त करने के बाद जब वे निद्रा में लीन होने को होते, तब वे अपनी इच्छा शक्ति की सहायता से जाग्रत रहते। इस तरह अभ्यास करते करते उन्होंने पाया कि उनकी नींद बहुत कम हो गई है, और ब्रह्म और उनके बीच एक बहुत बारीक अन्तर रह गया है। वे अतिचेतनावस्था की कगार पर पहुँच गये थे। (स्वामी रितजानन्द कृत अंग्रेजी पुस्तक स्वामी तुरीयानन्द, रामकृष्ण मठ, मद्रास- ६७३, पृ०-४)।

(क्रमशः)

आध्यात्मिक जीवन का मर्म

—ब्रह्मलीन स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज

प्रश्न—हाल ही में पश्चिम और जापान की आपकी यात्रा पूर्ण हुई है। क्या आपको ऐसा लगता है कि वहाँ के लोग श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के प्रति आकृष्ट हुए हैं ?

उत्तर—मैं प्रचार के लिए तो जाता नहीं। मैं जाता हूँ भक्तों से मिलने। इसलिए आप ऐसा अनुमान कर सकते हैं कि वहाँ भक्त हैं। मैं उन लोगों से मिलने गया था। मैं कुछ घूमने देखने गया नहीं था या लोगों को उपदेश देने के लिए भी नहीं गया था। जो लोग मेरे पास आते उनके साथ मैं बातें करता, और इसलिए स्वाभाविक रूप से उन लोगों को इस विचारधारा में थोड़ा-सा रस है, ऐसा तुम समझ सकते हो।

उन लोगों को हमारे आश्रम के जो आदर्श हैं उनके प्रति रस है। इसलिए ही वे लोग आते हैं. वर्ना नहीं आते। और मैं वहाँ जाकर जन सभा का भी आयोजन नहीं करता। जो लोग आश्रम में आते, उनसे मैं बातें करता, वे लोग प्रश्न पूछते, उसका उत्तर देता। मैं जापान में नौ-बार गया था। वहाँ पहले एक स्वतंत्र प्राइवट केन्द्र था, किन्तु अब वहाँ एक आश्रम शुरू हुआ है, जो ई सन् १९८४ से बेलुर के रामकृष्ण मठ से संलग्न हो गया है। इस आश्रम से कुछ साहित्य प्रकाशित होता है। जापानी भाषा में श्रीरामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द और माँ सारदा देवी के जीवन और आदर्श सम्बन्धी जो पुस्तकें प्रकाशित होती हैं, इनसे वे लोग इनके प्रति आकर्षित हुए हैं। मैं तो नौ-दश वर्षों से आया-जावा करता हूँ। और देखता हूँ कि वे लोग खूब रस ले रहे हैं। यद्यपि उन लोगों की संख्या अधिक नहीं है, तथापि जो आते हैं, वे सोच-समझकर आते हैं। वहाँ पर यहाँ जैसा नही है कि रामकृष्णदेव कौन थे यह मालूम न हो और फिर भी मंत्र-दीक्षा लेनो है, ऐसा कहें ! वहाँ लोग सचमुच रसपूर्वक आते हैं। हमारे देश में जितने लोग पढ़ते हैं, उससे ज्यादा जपानी लोग ध्यान से पुस्तक पढ़ते हैं। जपानी भाषा में श्रीरामकृष्ण-कथामृत एवं जीवन-चरित्र छप गए हैं। वे लोग अंग्रेजी जानने पर भी जपानी भाषा में पढ़ना अधिक पसंद करते हैं। बाहरी भाषा पर वे आस्था नहीं रखते। जपानी भाषा अति कठिन है। प्रकाण्ड पंडित के सिवा कोई अच्छी तरह उसे पढ़ भी नहीं सकता। फिर भी वे लोग खूब रस ले रहे हैं। भले हो संख्या अधिक नहीं हैं, फिर भी धीरे-धीरे प्रभाव बढ़ रहा है।

यह जपान की बात हुई। मैं पश्चिम में दो महीने से ज्यादा नहीं रहा। अमेरिका एक विशाल देश है। वे लोग सभी को मौका और सुविधा देते हैं। वहाँ आगे बढ़ने का अधिक मौका है इसलिए लोग उस ओर आकृष्ट होते हैं। लेकिन मैं ऐसा नहीं कह सकता कि अमेरिका में लोगों को धर्म की ओर आकर्षण है। वहाँ चर्च के बड़े-बड़े भवन हैं। किन्तु वहाँ आठ-दस आदमी आ जाये तो भी काफी है। जिन्हें धम के साथ कुछ भी लेना-देना न हो, ऐसे लोगों को आकृष्ट करने की पादरियों द्वारा बिभिन्न प्रवास होते हैं। चर्च में बॉल डान्स भी होते हैं, और सिनेमा भी दिखाते हैं, फिर भी

उस ओर लोगों को रस नहीं है। वहाँ ऐश्वर्य खूब है और आनंद-उपभोग की सामग्री भी विपुल मात्रा में हैं। सप्ताह में पाँच दिन वे लोग अति-शय कार्यरत होते हैं, इसलिए दो दिन छुट्टी मिले तब आनंद करने के लिए निकल पड़ते हैं। इस प्रकार धर्म उन लोगों के जीवन का कोई आदर्श नहीं है। पश्चिमी देशों की यही एक कमी है। धार्मिक वृत्तिवाले लोग वहाँ नहीं हैं ऐसा भी नहीं, किन्तु इनकी संख्या बहुत कम है, कारण यह कि वहाँ का वातावरण इसके अनुकूल नहीं है। हमारे देश में वातावरण अतिशय अनुकूल है। कहा जाता है कि भारत तीर्थमय पुण्य-भूमि है। हमारे रीति-रिवाज, हमारी संस्कृति यह सब कुछ धर्म पर आधारित हैं। और फिर भी देखा जाए तो कितने लोग इस ओर आकर्षित होते हैं? अधिक नहीं। इसलिए धर्म सभी के लिए आकर्षण की चीज है ऐसा भी नहीं है। फिर भी वह जीवन में एक मुख्य जरूरी वस्तु तो है। हमारा जीवन किस लिए है? इसका विचार कोई करेगा नहीं। जिस प्रकार गुजराती में कहते हैं :—"खा-पी कर मजा करें।" इसमें जीवन का अर्थ है? यों तो सभी देशों में वैसी ही स्थिति है, लेकिन ऐसा कह सकते हैं कि पश्चिमी देशों में यह जरा ज्यादा है। स्वामी विवेकानंद दुनिया के अनेक स्थलों पर घूमकर इस सिद्धान्त पर दृढ़ हुए हैं कि भारत पुण्यभूमि है, भारत से धीरे-धीरे धर्मभाव दूसरे देशों में प्रचारित होगा ही। 'भारत पुण्यभूमि है'—इसका अर्थ क्या है? हम सभी धार्मिक हैं, ऐसा नहीं। लेकिन हमारा वातावरण अनुकूल है। हम यदि चाहें तो उससे लाभ पा सकते हैं। यही भारत की विशिष्टता है। पश्चिम के देशों में इसका अभाव है। वहाँ वृद्धावस्था में सरकार की ओर से पेन्शन दिया जाता है। किसी को नौकरी प्राप्त न होने पर भी, वह जी सके इतनी सहायता सरकार करती है। सभी विषय में सरकार ध्यान रखती है। फिर भी मनुष्य को शांति नहीं है! ऐसा कह नहीं सकते कि वे लोग जीवन में सुखी हैं। शरीर को मजबूत रखने के लिए रास्ते पर सभी दौड़ते हैं, और तंदुरुस्त हैं भी। खाना खूब मिलता है। वे लोग हमसे दो-तीन गुना खाते हैं। फिर भी मन में शांति नहीं है। उस शांति के लिए क्या चाहिए? धर्म शांति का आधार है। इसलिए जबतक लोग धर्म की ओर अधिक प्रवृत्त न होंगे, लोग अपना दृष्टिकोण नहीं बदलेंगे, तबतक अशांति रहेगी और मन में अशांति होगी इसलिए युद्ध इत्यादि चलते रहेंगे। इसलिए सौ वर्ष पूर्व स्वामीजी ने जो कहा था, हाल में वहाँ जाकर देखा तो पता चला कि अब भी वहाँ वैसी ही स्थिति है। लोगों को सही रास्ते पर लाने की कोशिश जारी है। और धर्म के प्रति उन्हें आकर्षण हो, इसलिए साहित्य भी प्रकाशित होता है। कुछ लोग हमारी ओर आ रहे हैं, इन्हें देखकर पता चलता है कि जागृति धीरे-धीरे आ रही है। ईसाई धर्म में मुश्किल यह है, जो अति प्राचीन मान्यताएं थीं, उसके लिए उनमें अभी चर्चाएं होती रहती हैं। जैसे कि भगवान् ने सात दिनों में सृष्टि रच डाली। विज्ञान का इससे विरोध है। इसलिए लोग चर्च के सिद्धान्तों की ओर रस नहीं दर्शाते। ये लोग सोचते हैं कि ऐसी रूढ़िगत मान्यताओं से धर्म को कैसे मुक्त करें? नयी दृष्टि प्राप्त हो ऐसे प्रयास वहाँ हो रहे हैं। और स्वामीजी के जो ग्रंथ हैं वे सभी नयी दृष्टि प्राप्ति में काफी उपयोगी हैं। इसलिए स्वामीजी के आदर्शों की ओर उन लोगों का आकर्षण बढ़ता जा रहा है। यह देखकर लगता है कि सुदूर भविष्य में उनकी दृष्टि में कुछ फर्क होगा। वहाँ के आश्रम में जो लोग आते हैं और बातें करते हैं उनसे हम कुछ नयी बातें तो नहीं करते। लेकिन श्रीरामकृष्ण और स्वामीजी जो आदर्श दर्शा गये हैं वही हम उन्हें दर्शाते हैं। उन लोगों का इनमें गहरा रस

सके इस दृष्टिकोण से यह सरल विचार यहाँ रखता हूँ : प्रथम—'ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है।' यह बात हम लें। यहाँ 'सत्य' का अर्थ 'नित्य', सदा विद्यमान, जिसका कभी नाश नहीं होता जिसकी हस्ती सदा-सर्वदा है—यह है। ब्रह्म का निर्देश इस तरह किया जाता है—जो अपरिणामी है, अपरिवर्तनशील है, अविनाशी है—ऐसा होता है। 'ब्रह्म' शब्द का यौगिक अर्थ—व्युत्पत्तिमूलक अर्थ—'सर्वव्यापी'—ऐसा होता है। यह शब्द 'वृहत्' शब्द में से निकला है। उसका अर्थ 'व्यापक', 'सर्वव्यापी' ऐसा होता है। जो वस्तु सीमित नहीं, देश से सीमित नहीं, काल द्वारा सीमित नहीं और निमित्त द्वारा भी सीमित नहीं, अर्थात् ब्रह्म स्वयंभू है। ब्रह्म की उत्पत्ति के लिए कुछ कारण नहीं होता। ब्रह्म स्वयं सिद्ध है। जिस प्रकार अंधकार में स्थित वस्तु को देखने के लिए प्रकाश की जरूरत होती है। हमारी इन्द्रियों द्वारा उस ब्रह्म को जानना या पहचानना भी शक्य नहीं है। क्योंकि हमारी पाँचों इन्द्रियों के विषय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध—इन पाँचों वस्तुओं से ब्रह्म भिन्न है। ये पाँचों वस्तु ब्रह्म में नहीं हैं। उसका स्पर्श नहीं हो सकता, शब्द द्वारा उसे कह नहीं पाते, आँख द्वारा वह आस्वाद्य भी नहीं, घ्राणेन्द्रिय द्वारा उसे समझ नहीं पायेंगे, क्योंकि उसमें गंध नहीं है।

प्रश्न :—तो फिर, जो वस्तु इन पाँचों इन्द्रियों से परे है, अर्थात् जो इन्द्रियातीत है, उसे हम इन्द्रियों द्वारा तो जान नहीं सकते, फिर इन्द्रियों द्वारा अगम्य वस्तु को कैसे समझें ?

उत्तर :—यह ठीक है (यह सही है) कि सामान्यतः हम प्रत्येक वस्तु का अनुभव अपनी इन्द्रियों द्वारा ही करते हैं। ये सभी इन्द्रियग्राह्य वस्तुएँ सीमित होती हैं। और वे निःसीम ब्रह्म से भिन्न होती हैं, किन्तु उन वस्तुओं में निहित प्रकाश का क्षय नहीं होता। मानलो कि हमारी आँख काम करना बंद कर दे तो दिखाई नहीं देगा, कान कार्य न करें तो सुनाई नहीं देगा, लेकिन यदि मन काम करना बंद कर दें तो? तो हम किसी भी बात को समझ नहीं पाएंगें। ऐसा होते ही सभी इन्द्रियाँ निरर्थक बन जायगी। अर्थात् सभी इन्द्रियाँ मन के प्रकाश पर आधारित हैं।

प्रश्न :—तो फिर सर्व इन्द्रियों के प्रकाशक मन को कैसे जाना जा सकता है ?

उत्तर :—ऐसा तो दिखता नहीं कि मन को जानने के लिए कोई अलग साधन हो। लेकिन जरा ध्यान से सोचो तो लगेगा कि मन परिणाम लाता है, परिवर्तित होता है। जरा गहराई से सोचें कि 'यह मन बदलता है।" यह जाननेवाला कौन है? हमारे मन में जो परिवर्तन होता है, उसे मन खुद तो समझ नहीं सकता इसलिए मन से भी परे कोई वस्तु अवश्य ही होनी चाहिए कि जिसके द्वारा हम मन को पहचान पायें। जिनके द्वारा मन में होनेवाले परिवर्तनों को जान सकें। वह वस्तु मन से अलग है। अर्थात् हम यदि मन से परे रहनेवाली वस्तु को न समझें, तो मन में होते रहते परिवर्तनों और परिणामों को समझ नहीं पायेंगे। इसलिए मन से परे वही एक मात्र वस्तु है।

प्रश्न : किन्तु मन से भी परे रहनेवाली उस वस्तु को हम कैसे समझ सकते हैं ?

उत्तर :—मन से परे रहनेवाली उस वस्तु को मन द्वारा तो जाना नहीं जायेगा। इसलिए उस वस्तु को स्वयं-प्रकाश कहा जाता है। स्वयं-प्रकाश अर्थात् उस चीज को प्रकाशित करने के लिए किसी अन्य चीज की—दूसरे साधन की जरूरत न हो। मैंने पहले ही कहा था कि अंधकार में न दिखनेवाली वस्तु को प्रकाशित करने के लिए

प्रकाश को—अन्य वस्तु की जरूरत पड़ती है, किन्तु स्वयं प्रकाश को प्रकाशित करने—जानने के लिए क्या कुछ चाहिए? बस, वह प्रकाश ही पर्याप्त है। दूसरा कुछ नहीं चाहिए। प्रकाश याने स्वयं प्रकाश। प्रकाश को भी प्रकाशित करने के लिए यदि हम अन्य वस्तु—अन्य प्रकाश की कल्पना तो करें! तो फिर कहीं अन्त ही नहीं होगा और अनवस्था दोष आ जायेगा। अर्थात् उस अन्य प्रकाश को प्रकाशित करने के लिए तीसरा प्रकाश, चौथा प्रकाश। अर्थात् वह प्रकाश एक ही वस्तु है; स्वयं प्रकाश! ऐसा मानना चाहिए। इन सभी बातों का तात्पर्य आप समझ गये होंगे या नहीं, यह मैं नहीं जान सकता, परन्तु मैं सीधी-सरल भाषा में कहूँ तो वह प्रकाश खुद ही अपने आप को प्रकाशित करता है। उसे प्रकाशित करने के लिए उससे अलग आलोक-प्रकाश की जरूरत कैसे हो सकती है? हाँ अंधकार में स्थित वस्तु को प्रकाशित करने के लिए आलोक-प्रकाश की जरूरत होती है। हां, मन को आलोकित करने के लिए भी उससे अलग प्रकाश की जरूरत होती है अर्थात् उस प्रकाश के विषय रूप मन का होना जरूरी है। यदि मन न हो तो वह आलोक अपने सिवा अन्य किसे, कैसे आलोकित करेगा? मन न हो तो आलोक प्रकाश नहीं कर सकता। हमें इस तरह प्रत्येक वस्तु जानने के लिए मन पर आधार रखना पड़ता है। मन को जानने के लिए दूसरी किस वस्तु की जरूरत है? यह प्रश्न के उत्तर में इसलिए ही हम यह कहते हैं कि एक ऐसे प्रकाश की जरूरत है, जो कि स्वयं-प्रकाशित हो, जिसे प्रकाशित करने के लिए अन्य वस्तु की आवश्यकता न हो। ऐसे प्रकाश को संस्कृत में हम 'स्वयं-प्रकाश' कहते हैं और वही 'स्वयं-प्रकाश तत्त्व' ही ब्रह्म है। वह ब्रह्म स्वयं प्रकाशित होने से ही प्रत्येक वस्तु को आलोकित करता है। 'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति'—उस के ही प्रकाश से यह सर्व जगत् प्रकाशित होता है। अर्थात् संपूर्ण जगत उस स्वप्रकाश ब्रह्म पर अवलंबित है। अर्थात् जगत की सभी वस्तुओं का नाश होने पर भी वह प्रकाश नष्ट नहीं होता; क्योंकि वह अन्य किसी चीज पर अवलंबित नहीं है। वह तो स्व-प्रकाश है। अर्थात् दूसरी सभी वस्तुओं का प्रकाश उस स्व-प्रकाश पर आधारित है। वह खुद किसी अन्य वस्तु पर आधारित नहीं है। इसलिए ही ब्रह्म 'स्व-प्रकाश' है ऐसा बुद्धि से सोचने पर हमें मानना पड़ेगा। क्योंकि यदि वह न होता तो हमें संसार की किसी भी वस्तु का ज्ञान ही न होता। इसलिए वह जगदाधार स्व-प्रकाश ब्रह्म ही सभी का आधार है और सम्पूर्ण संसार का नाश हो जाए तो भी उसका नाश नहीं होगा। क्योंकि उसे प्रकाशित करने के लिए जगत की जरूरत नहीं वह तो स्व-प्रकाश है और उसका नाश कर सके ऐसी कोई वस्तु है हीं नहीं। और स्व-प्रकाशित वस्तु भी यदि किसी दिन होती हो तो 'वह नष्ट होती है'—ऐसा जाननेवाला कौन है? यूँ स्वयं सिद्ध 'Self-evident', किसी भी अन्य चीज पर अवलंबित न रहनेवले इस ब्रह्म का नाश कभी भी संभवित है ही नहीं, यह वेदान्त का सार तत्त्व है।

प्रश्न :—श्लोक में दर्शाये सूत्र 'ब्रह्म सत्यं' के बारे में आपके तर्कों से थोड़ा-सा ख्याल आया, लेकिन इनका दूसरा सूत्र 'जगन्मिथ्या'—जगत मिथ्या है—इसे कैसे समझा जाए?

उत्तर :—जो वस्तु दिखती है तो अवश्य, फिर भी वह नित्य होती नहीं, तब उसे 'मिथ्या' कहते हैं। 'मिथ्या' शब्द का ऐसा अर्थ है। ऐसी मिथ्या वस्तु प्रकाशित होती है—दिखती है, तब भी वह मिथ्या ही होती है, क्योंकि तब भी उसकी कोई सही सत्ता-हस्ती नहीं होती। इसलिए ही उसे

मिथ्या कहा जाता है। उदाहरणार्थ सचमुच में जो एक रस्सी-रज्जु ही है, उसमें साँप हकीकत में न होने पर भी साँप जैसा आभास होता है। हकीकत में तो वह रस्सी ही है। उसमें दिखाई दे तो भी वह साँप नहीं है। साँप तो एक भ्रम है। उस सांप को मिथ्या कहा जाता है। जो वस्तु नहीं है, जिसकी कुछ सत्ता नहीं है, फिर भी जो दिखाई दे, उसे मिथ्या कहा जाता है। संसार ऐसी ही एक वस्तु है; क्योंकि संसार दिखाई तो देता है, इसको कोई अस्वीकार तो कर नहीं सकता। फिर भी यदि दृश्यमान जगत सत्य हो, तो उसका कभी भी नाश नहीं होना चाहिए। "नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।" अर्थात् जो वस्तु असत् हो, वह कभी भी विद्यमान हो ही नहीं सकती और कभी भी प्रकाश दे नहीं सकती। और जो वस्तु सत् होती है, उसका नाश मान लें तो मैंने प्रथम दर्शाया है तदनुसार उस नाश को जाननेवाला कोई मिलेगा नहीं। इस प्रकार ब्रह्म नित्य और सदा प्रकाशमान है। और जगत नित्य न होने पर भी, उसे खुद प्रकाश न होने पर भी ब्रह्म की सत्ता और ब्रह्म के प्रकाश के कारण प्रकाशित होता दिखाई देता है। जगत ब्रह्म पर आधारित है। इसलिए जगत को अनित्य कहते हैं। अर्थात् वह दिखता है फिर भी उसे मिथ्या कहते हैं; 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'।

प्रश्न :—श्लोक का तीसरा सूत्र 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' जीव, मनुष्य, प्राणी आदि सभी ब्रह्म के सिवा दूसरा कुछ भी नहीं इसे किस प्रकार समझा जाए ?

उत्तर :—इन सभी जीवों की सत्ता भी किस पर आधारित है ? इसके बारे में सोचने से लगता है कि ये भी स्वयं ब्रह्म के सिवा दूसरा कुछ नहीं है, क्योंकि ये यदि और कुछ भी हों तो उनकी वह पृथक सत्ता किसके आधार पर है ? जिस प्रकार जगत की सत्ता ब्रह्म पर आधारित है वैसे ही जीवों की सत्ता भी हम पर आधारित है। वह ब्रह्म से पृथक नहीं। सचमुच वह ब्रह्म ही है, इतना दर्शाना उपयुक्त होगा। यह बात 'ब्रह्म सत्यम्' में समाहित होने पर भी यहाँ तीसरे सूत्र में उसका पुनरावर्तन किया है। पुनरावर्तन का कारण यह है कि हमें बार-बार यह ज्ञान होता रहे—'हम अलग हैं।' ऐसा अनुभव होता रहे, यह भ्रम है, यह सूत्र दृढ़ीभूत करना चाहता है। 'जीवो ब्रह्मैव नापरः'—अर्थात् ब्रह्म से भिन्न कुछ भी नहीं है। यह वेदान्त का सिद्धान्त है। हमारे पास अधिक समय नहीं है और वेदान्त को समझने में अधिक समय लगे, इसलिए संक्षेप में कहा है।

प्रश्न :—इस प्रकार के ज्ञान का उपयोग कहाँ और कैसे हो सकता है ?

उत्तर :—यदि जगत अनित्य ही हो, तो जगत के लिए, जगत के पदार्थों के प्रति हमारे मन में जो आकर्षण है, जो लालच है, वह भी बिलकुल मिथ्या ही है। जो वस्तु है ही नहीं, इसके लिए हमारा आकर्षण भी किस प्रकार सही हो सकता है ? इसलिए जो आकर्षण हमें होता है, उसका कारण भ्रान्ति है। इसे माया-अविद्या कहते हैं। यह जगत मायिक है। यह अज्ञान से उत्पन्न होता है, यह ज्ञान प्राप्त हो जाए तो अज्ञान नष्ट हो जाएगा। जिस प्रकार प्रकाश आने से अंधकार दूर हो जाता है, वैसे ही ब्रह्मज्ञान होते ही जगत मिथ्या हो जाता है। वह नष्ट ही नष्ट हो जाता है। अंधकार हो तो रस्सी में साँप नजर आता है, किन्तु वहाँ बत्ती लाई गई तो सर्प कहाँ होता है ? सर्प तो कहीं भी नहीं होता। वह तो रज्जु-रस्सी ही है न ? इस प्रकार ज्ञान से देखने से जगत कहाँ है ? वह तो मात्र ब्रह्म ही है ! जगत ब्रह्म स्वरूप ही है। किन्तु सत्य ब्रह्मरूप में दिखता नहीं अलग लगता है अर्थात् वह मिथ्या है।

अब इस ज्ञान के उपयोग के बारे में बात करें। यदि जगत मिथ्या वस्तु हो तो मन का आकर्षण उसके प्रति नहीं होना चाहिए। और यदि हो भी तो हमारी भ्रान्ति के कारण ही होता है। रास्ते पर चमकीली वस्तु देखकर हमें लगता है कि वह 'Silver' है। किन्तु नजदीक से गौर से देखने से पता लगता है कि अरे; यह तो सीप है! Shell! उसकी चमक एवं उज्ज्वलता देखकर ऐसा लगता है कि वह चाँदी है! फिर उसे उठाने के लिए कोई आगे आयेगा नहीं। इस प्रकार जगत के प्रति हमारा आकर्षण जगत के सच्चे रूप को जानने के बाद आप ही आप दूर हो जायेगा। यह ब्रह्म ज्ञान का फायदा और उपयोग है।

प्रश्न :—परन्तु जगत के साथ व्यवहार में यह ज्ञान हमें किस प्रकार उपयोगी हो सकता है?

उत्तर :—जगत के व्यवहार में इस ज्ञान का उपयोग हम इस प्रकार कर सकते हैं। यह जगत अपने लिए काम्य वस्तु नहीं है। इसके लिए हमारे मन में लालच नहीं होना चाहिए। और जो भी दिखाई देता है; वह ब्रह्म ही है। जीव-जीव के बीच भेद-भाव का कोई अर्थ नहीं है। केवल एक अद्वितीयता का ही हम भेद कर देते हैं! 'मैं एक, फलाँ व्यक्ति मेरा', इस प्रकार मैं और मेरापन (अपनापन)—अहं और ममत्व दूर हो जाए, तब संसार में ऐसे व्यक्ति का व्यवहार बदल जाता है। उसे फिर किसी भी वस्तु के प्रति आकर्षण नहीं रहता। उसे किसी भी वस्तु के प्रति भेदभाव नहीं रहता। जो मैं हूँ वही दूसरे हैं, तत्त्व एक ही है। हम इस प्रकार सोचें तो किसी के भी प्रति हमें भेदभाव, ईर्ष्या-द्वेष आदि कुछ भी नहीं रहेगा। सभी मेरे ही स्वरूप हैं। यदि सम्पूर्ण विश्व मेरा अपना स्वरूप हो तो फिर किसी के साथ हम क्यों लड़ें? क्या किसी का भी अकल्याण करना चाहिए? दूसरे का अकल्याण मेरा अपना ही अकल्याण, ऐसा समझ लें तो फिर संसार के प्रति हमारा दृष्टिकोण बदल जाएगा। इस प्रकार वेदान्त व्यावहारिक जीवन में भी अत्यन्त उपयोगी है। ये सभी बातें हम जल्दी से और आसानी से समझ नहीं सकते, क्योंकि मन में दृढ़ीभूत पुराने संस्कार हमें अलग रीति से कार्यान्वित करते हैं। उन संस्कारों को समूल उखाड़ने के लिए भी उपर्युक्त वेदान्त ज्ञान को ग्रहण करने की जरूरत है। ऐसे वेदान्त ज्ञान को—'Practical Vedanta'—'व्यावहारिक वेदान्त' कहा जाता है।

ठाकुर पर विश्वास रखो। वे तुम्हारी विपदाओं से रक्षा करेंगे और तुम्हें मानसिक शान्ति देंगे। ईश्वर के नाम का स्मरण करो और ठाकुर के उन कष्टों का ध्यान करो जो उन्हें दूसरों के बुरे कर्मों के फलों को स्वीकार करने के कारण भोगना पड़ा था, और तब तुम देखोगे कि तुम्हारा शरीर और मन पवित्र हो गया है। यदि तुम केवल इतना स्मरण करो कि कैसे परम पवित्र और भगवत्स्वरूप ठाकुर ने दूसरों के लिए व्याधियाँ सही हैं तथा इन घोरतर व्याधियों के बीच एक क्षण के लिए भी वे भगवदीय आनन्द और जगन्माता के भुवनमोहन स्वरूप के चिन्तन से विरत नहीं हुए, तो तुम्हारे सारे दुःख और कष्ट नगण्य हो जाएँगे।

—माँ सारदा

देवलोक में (२)

—स्वामी निर्वाणानन्द

अनुवादक—श्री अरुण देव भट्टाचार्य

महाराज के शरीर-त्याग के बाद मुझसे मिलने दो एक बार आयी थी। उसके सालों बाद सन् १९४२ में बेलुड़ मठ में वह महिला पुनः मुझसे मिली थी। कई साल बीत गये थे उस महिला ने मुझसे पूछा था कि मैं पहचान पा रहा हूँ अथवा नहीं। मैंने 'नहीं' कहा था, तब उस महिला के द्वारा पूर्व की सारी घटनाओं को बताना शुरू करते ही मुझे सारी बातें याद आ गयी थीं। वे अब कहाँ रहती हैं पूछने पर बोली थी, "टालीगंज में।" बहुत साल तक वृन्दावन में रहकर तपस्या भी की थी। हरिद्वार में भी कुछ साल थीं। उन्हें देखकर लग रहा था कि वे आनन्द से ही जी रही हैं। मैंने पुनः आने के लिए कहा था, परन्तु वे आयी नहीं। बाद में साथ की महिला ने मुझको बताया था कि उन्होंने ठाकुर के ऊपर कई गीत लिखे हैं। मेरे द्वारा गीतों को मांगने पर मुझको वह साथी महिला दे गयी थीं, बाद में। उन्हीं से बाद में पता चला था कि महिला शरीर त्याग कर चुकी थीं। शरीर त्याग के समय कम उमर की थी करीब ४२ साल की। परन्तु तब मुझे आश्चर्य हुआ था जब मैंने सुना था कि महिला देहान्त के पहले ही अपने शरीर त्याग के बारे में सब कुछ जानती थी। उन्होंने अपनी मृत्यु की तारीख और समय पहले ही बता दिया था। निर्धारित समय में ही ठाकुर, माँ, स्वामीजी और महाराज का नाम लेते-लेते शरीर छोड़ दिया था।

स्वामीजी के साथ ठाकुर का एक विशेष सम्बन्ध था और ठाकुर ने स्वामीजी को अपने भाव प्रचार—देश-विदेशों में, और संघ स्थापना का यन्त्रस्वरूप बनाया था। स्वामीजी ने ठाकुर की इस विशेष शक्ति के बारे में बोलते हुए स्वीकार किया था कि उसके बिना वे कुछ करने में असमर्थ हैं। अमेरिका में स्वामीजी ने ठाकुर को अपने पास खड़ा रहते हुए देखा था और नींद में अपने भाषण का सारांश बोलते पाया था। परन्तु संघ चलाने की शक्ति ठाकुर ने महाराज को दी थी। स्वामीजी एक बार बोले थे कि ऐसा एक संघ स्थापन करूँगा जो यन्त्र समान चलेगा। स्वामीजी के देह त्याग के बाद महाराज को यह संघ चलाना पड़ा था। वे जैसे इस संघ को चलाने के लिए निर्दिष्ट थे। उनकी बुद्धिमत्ता, धैर्य, निःस्वार्थ परायणता आदि संघ को धीरे-धीरे उन्नति की तरफ ले गये थे। यह होते हुए भी उनकी आध्यात्मिकता ही सर्वोच्च मानी जाती है। ठाकुर की स्वमुख उक्ति थी कि राखाल एक राज्य चला सकते हैं। स्वामीजी की बाहरी ज्योति देखकर हम आश्चर्यचकित हो जाते हैं जैसे वे समस्त जगत को समेट लेंगे। और महाराज के सम्बन्ध में स्वामीजी की उक्ति इस प्रकार की है—"राखाल अपनी आध्यात्मिकता से भरपूर है और उसी में अपना मन केन्द्रित रखता है।" ये हैं इनके सम्बन्ध में बातें। ठाकुर की सन्तानों की तुलना किसी से नहीं हो सकती है।

महाराज की परिहासप्रियता भी अतुलनीय थी। बच्चों के साथ खुलकर खेल करते थे। बलराम बसु महाशय के घर के बच्चे उनके साथी

जैसा उनसे खेलते थे। सब कुछ बहुत प्यार से होता था। बच्चे सर्वदा उनके पास पड़े रहते थे। महाराज भी बच्चों के लिए फल, मिठाई आदि रखते थे। एक दिन दोपहर को महाराज ने बच्चों को डराने का खेल खेला था। उनके पास एक शेर का मुखौटा था। मुझको सब खिड़की दरवाजा बन्द करने को कहा। स्वयं अन्धेरे में शेर का मुखौटा पहने बैठे रहे। मैं दश-बारह बच्चों को लेकर जब दरवाजा खोलकर उस अन्धेरे कमरे में घुसा तो महाराज ने शेर की दहाड़—'हुम' की। बच्चे अचानक शेर देखकर और दहाड़ सुन कर चिल्लाते हुए घर के भीतर भागे। एक बच्चा तो डर से बेहोश-सा हो गया था। उसके बाद सब को पुनः पकड़कर कमरे में लाया गया था। महाराज तब मुखौटा खोलकर बैठे थे और हंस रहे थे। उन्होंने बच्चों से पूछा, "बात क्या है?" महाराज इस प्रकार से अपने मन को साधारण स्तर पर उतार कर रखते थे।

ठाकुर ने कमल के ऊपर श्रीकृष्ण के साथ महाराज को नृत्य करते हुए देखा था, इसको महाराज को जानकारी नहीं थी। यद्यपि ठाकुर की अन्य सन्तानें इसको जानती थी। ठाकुर ने उसे महाराज को बताने से मना किया था। परन्तु मुझको विश्वास है कि महाराज को इस बात की खबर अवश्य ही रही होगी। महाराज मुझको यह बताया करते थे कि वे सब जानते हैं और सब कुछ समझते हैं। अवश्य ही मैंने कभी महाराज के मुख से इस 'कमल कृष्ण' की बात सुनी नहीं थी। ठाकुर की इस बात को गुप्त रखने का उद्देश्य यह अवश्य ही रहा होगा कि महाराज को अपने स्वरूप का उद्दीपन होने पर देह पतन को सम्भावना थी। इस प्रसंग में और एक घटना की याद आती है। एक दिन महाराज बेलुड़ मठ में गंगा घाट के बरामदे में बठे थे। संध्या का समय था। वहाँ पर शुकुल महाराज (स्वामी आत्मानन्द) उपस्थित थे। महाराज उनसे बोल रहे थे कि उनको एक स्वच्छ व्यवधान दिखाई पड़ रहा है जिसके कारण वे उस तरफ नहीं जा पा रहे हैं; क्योंकि ठाकुर नहीं जाने दे रहे हैं।

महाराज अपने लोगों से अपार स्नेह करते थे। वे तो अपना प्यार दिखाने के लिए शिष्य नहीं बनाते थे। वे इस कारण उसका प्रकाश भी नहीं करते थे। उनका स्नेह अनुभव का विषय होने से उसको समझना और समझाना भाषा द्वारा सम्भव होता नहीं था। उनके स्नेह पाने वालों में एक परिवर्तन लक्ष्य किया जाता था। परिवर्तन से ही स्नेहभाजन की पहचान होती थी।

श्री श्री माँ के दर्शन का सौभाग्य मुझको हुआ था। यद्यपि माँ के बागबाजार में रहते समय मैं अधिक जाता नहीं था परन्तु कभी बाहर जाने का अवसर होता था तो पहले प्रणाम करके बाद में यात्रा करता था। यह मन में था कि माँ हैं और कोई चिन्ता की बात नहीं है। माँ के पास जाकर भी कोई प्रश्न करने की जरूरत अनुभव नहीं करता था और उनके पास जाने से ही मन परितृप्त हो जाता था। जीवन में सार्थकता का अनुभव होता था। माँ के पास जाने से ही एक अपार्थिव स्नेह का अनुभव होता था। माँ वास्तव में अपनी माँ थी। एक घटना की याद आती है। एकबार मुझको तपस्या में जाने का इच्छा हुई थी। बाबूराम महराज को यह कहने पर वे पहले बहुत असन्तुष्ट हुए थे परन्तु बाद में, सम्मति दे दी थी। महापुरुष महाराज को मैंने पहले से ही राजी कराया था। बाबूराम महाराज ने मुझको माँ की अनुमति लेने के लिए कहा था मठ से माँ के पास जाते-जाते संध्या काल हो गया था। जाकर माँ को प्रणाम करने पर माँ ने पूछ ही लिया कि 'बात क्या है ?' मैंने निवेदन किया कि

मुझे उत्तराखण्ड जाने की इच्छा है। माँ ने मुझको बैठने के लिए कहा था और प्रसाद खाने के लिए दिया था। मेरे मन में तपस्या के लिए जाने की इच्छा थी और माँ की चिन्ता और कहीं पर थी।

मैं चुप बैठा रह गया और समझ रहा था कि माँ के मन में बात ठीक बैठी नहीं थी। माँ ने मुझसे वचन माँगा था कि तपस्या मे मैं कठोरता का परिहार करूँगा। वचन देने में मुझे डर था कि यदि मैं उसका पालन न कर पा सकूँ तब क्या होगा? माँ वही बात आधा घंटा पौन घंटा तक बार-बार बोलती रहीं। मैंने देखा कि और अधिक चुप रहना ठीक नहीं है और मैंने वचन दे ही दिया कि तपस्या में कठोरता नहीं करूँगा। इस पर माँ ने सम्मति दे दी यह कहकर कि ठाकुर सब आयोजन कर देंगे और वे स्वयं प्रार्थना करेंगी। पुनः याद दिलायी थी कठोरता नहीं करने की। मुझको यही आश्चर्य लगा था कि जब तक मैंने वचन नहीं दिया था, माँ ने सम्मति नहीं दी थी। उन्होंने उसके बाद मुझसे कहा था "बेटा, तुम्हें तपस्या करने का जब इतना आग्रह है तब पैदल काशी अद्वैत आश्रम जाके रहो। कठोरता नहीं करना। माधुकरी करना। तुम्हें कोई अभाव नहीं होगा। ठाकुर तुम्हारे साथ हैं। परन्तु यह जानकर रखो कि अलग से तपस्या करने की जरूरत तुम लोगों को नहीं है।"

शशि महाराज और अन्य पार्षदगण भी महाराज को ठाकुर के रूप में ही देखते थे। परन्तु शशि महाराज की बात कुछ और ही थी। एकबार किसी कारण से महाराज शशि महाराज के ऊपर नाराज हुए थे। महाराज गम्भीर होकर बैठे थे तब शशि महाराज ने महाराज को साष्टांग प्रणाम करके, उनके चरण स्पर्श करके बोलते हुए सुना था, "महाराज तुम मेरे ऊपर नाराज हुए हो? मेरे कर्म से दुखी हुए हो? महाराज तुम चाहो तो क्षण भर में दृष्टि सृष्ट कर सकते हो। तब क्यों नाराज हुए हो, दुखी हुए हो?" इस प्रकार की थी महाराज के प्रति अन्य पार्षदों की भक्ति।

महाराज प्रातः चार बजने के पूर्व ही उठ जाते थे। स्वयं जगकर सबों को जगा देने को कहते थे। तब सब लोगों को जगाया जाता था। काशी में रहते समय महाराज ऐसा ही करते थे परन्तु सबों को जगाने को नहीं कहते थे। कारण यह था कि कई लोग रोगी सेवा के लिए रात में जागते थे। मठ में भी स्वामीजी के समय से ही नियम था सबेरे चार बजे घंटा बजाकर सबको जगाने का। वे स्वयं शय्या से उठकर हाथ मुँह धोकर बैठ जाते थे। सब साधुगण भी उनके कमरे में आकर बैठते थे। उनके कमरे में जिनको जगह नहीं मिलती थी वे बरामदे में अथवा अन्य कमरों में बैठ जाते थे। करीब छः बजे तक उस तरफ का जप-ध्यान चलता था और बाद में गाना होता था। उसके बाद साधुगण चले जाते थे अपना-अपना काम करने के लिए। काम सबका निर्दिष्ट रहता था। महाराज को मैं सदा सतर्क रहते हुए देखता था। सफाई का बगीचे का कर्म ठीक-ठीक हो रहा है अथवा नहीं, वे स्वयं देखा करते थे और निष्ठापूर्वक काम करने के लिए कहते थे। चाय पानी के बाद वे पूजा घर में जाते थे। विभिन्न कामों के लिए जैसे ठाकुर के भोग के लिए तरकारी काटना, डिस्पेन्सरी का काम, निष्ठापूर्वक हो रहा है या नहीं वे लक्ष्य रखते थे। उसके बाद भक्तगण आते थे। दो पहर का खाना खाने के बाद वे थोड़ा विश्राम करते थे। विश्राम के बाद मुझको श्री श्री रामकृष्ण कथामृत अथवा अन्य कोई धर्मपुस्तक पढ़कर सुनाने को कहते थे। अपराह्न में भक्तों से बातें करते थे। सर्दी के समय

पाँच बजे और गर्मी के समय छः बजे संध्याकाल में जप करने बैठते थे। साधु ब्रह्मचारी सब जमीन पर बैठ कर जप करते थे। मैं भी करता था। आरती में जानेवाले सब आरती समाप्त होने पर उनके कमरे में अथवा बरामदे में बैठते थे। मन्दिर में भोग लगने तक ऐसा ही चलता था और बाद में रात्रिकाल का भोजन होता था। परिवेश पूर्णत: भावगाम्भीर्यमय रहता था। ऐसे परिवेश में एक तरफ पतितोद्धारिणी गंगा की धारा नक्षत्रखचित आकाश, मठ का निःस्तब्ध प्रांगण और दूसरी तरफ महाराज के कमरे में, बरामदे में सब साधु ब्रह्मचारी-गण ध्यानरत। ऐसा होता था। लगता था कि पृथ्वी से दूर हम किसी जगह में पहुँच गये हैं जहाँ घनीभूत है अखण्ड आनन्द, माधुर्य और शान्ति, यही तो देवलोक है जहाँ अवस्थान कर रहे हैं देवलोक के राजा महाराज और अग्नि, वरुण, सूर्य की तरह उनके गुरुभ्राता-गण।

महाराज रात के दश बजे तक सो जाते थे और प्रात: चार बजने के पूर्व ही जग जाते थे। स्वयं पाठ करते समय गंगाजल से हाथ धोकर दो एक लाईन पढ़कर ही पुस्तक बन्द कर देते थे। आध्यात्मिक विषय पर प्रश्न करने पर उसका उत्तर देते थे। इसमें व्यक्तिविशेष के आध्यात्मिक स्तर और व्याकुलता पर उत्तर निर्भर करता था। कभी-कभी उत्तर एक महीना बाद भी देते थे। 'स्पीरीचुअल टाक्स' उनके इसी तरह उपदेश के उपदेशों का फल है।

मेरे मनमें महाराजके व्यक्तित्वके प्रति पूज्यभाव था, भय नहीं। कभी डाँट भी मिली थी, कभी साथ बैठकर गपशप करने का आनन्द भी। यह बात केवल महाराज के लिए नहीं ठाकुर की अन्य सन्तानों के लिए भी कही जा सकती है। बाबूराम महाराज एक दिन महाराज से कह रहे थे कि, "ये लोग मेरी बात मानते नहीं हैं, इतना डाँटता हूँ तब भी नहीं। लगता है इनको पता लग गया है कि यह सब बाहरी दिखावा ही है।" महाराज जब क्रोध करते थे मुझको कुछ भी डर नही लगता था। महापुरुष महाराज बोलते थे कि उनका क्रोध पानी के दाग जैसा है।

एकबार महाराज किसी बात पर मुझपर नाराज हो गये थे। बाबूराम महाराज ने उनसे बाद में कह दिया था कि उस बात में मेरा कोई दोष नहीं है। महाराज ने मुझसे कहा था, "क्यों रे! मैंने तुम्हें कष्ट दिया क्या?" वे इस तरह बोल रहे थे कि तब मुझको कष्ट अनुभव हो रहा था। मैंने उत्तर दिया था, "नहीं महाराज।" यह एक बार नहीं कई बार हुआ था। प्रत्येक घटना में उनके और उनके गुरुभाइयों के गंभीर प्रेम का परिचय मिला था। सब देवलोक का था। उनका परिचय इस जगत् का नहीं, देवलोक का है। सब घटनाएं देवलोक की हैं।

* महाराज से तात्पर्य है स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज; जो रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के प्रथम अध्यक्ष थे।

भगिनी निवेदिता—मानसिक समर्पण

—स्वामी अभयानन्द
सचिव, रामकृष्ण आश्रम, बिलासपुर (म० प्र०)

"भगिनी निवेदिता" यह शब्द विश्ववन्द्य स्वामी विवेकानन्द के साथ इस प्रकार जुड़ा हुआ है कि एक की याद आते ही दूसरे का नाम एवं उनके महत् कार्य स्वतः अपने मनस्पटल पर अंकित होने लगता हैं। इस पर मुझे स्वामी जी के परिव्राजक जीवन की एक बात याद आती है कि उन्होंने भारत में व्याप्त कुसंस्कारों को देखकर विचलित हृदय से माता कन्याकुमारी से कहा था "माँ मुझे तुमने पुराने ढंग का सन्यासी क्यों नहीं बनाया, माँ ! मुझसे भारत का दुःख देखा नहीं जाता माँ......।" इन शब्दों से यह विदित होता है कि स्वामी जी अद्वैत वेदान्त में पूर्ण प्रतिष्ठित होने के पश्चात् भी मनुष्य के हित, समाज को सुसंस्कृत, हिन्दुओं को आत्मप्रत्यय देने एवं देश को पुनः किस प्रकार जगाकर विश्व में सर्वोच्च स्थान में प्रतिष्ठित किया जाय इसके लिए कितने चिन्तित रहते थे ? इसके लिए जब यहाँ के राजाओं व सामंतों से किसी भी प्रकार की सहायता को आश्वासन तक ही सीमित पाते हैं (जैसे कि साधारणतया यहाँ भारत के शासक वर्गों का संस्कार रहा है कुछ अपवादों को छोड़कर) तो वे इस हेतु उस समय (१८९३ ई.) अमरीका के शिकागो शहर में होने वाली सर्वधर्म महासभा में योगदान कर तथा भारत देश के उत्थान हेतु विदेश जाना उचित समझ कर परिणत हुए। जैसा कि सर्वविदित है कि किस तरह उनके हृदय के अन्तस्थल से निकले अतिआत्मीय बोधक छः शब्दों ने उन्हें विश्वप्रसिद्ध एवं भारत को गौरवान्वित कर उच्च-शिखर पर आसीन कर दिया।

अमेरिका में अपने प्रचार कार्य के पश्चात् वे इंग्लैण्ड आये एवं वहाँ भी वेदान्त के प्रचार में व्यस्त रहे। इसी समय "मिस मार्गरेट एलीजावेथ नोबल" स्वामी जी* के प्रखर व्यक्तित्व एवं विद्वत्ता से आकर्षित हुईं। उनसे प्रथम मुलाकात अक्टूबर सन् १८९५ में हुई। वे अपने तीक्ष्ण विचार स्वामी जी के सम्मुख रखती एवं स्वामी जी भी ऋषि सदृश बिना किसी विरोध के उनका समाधान करते। उसके पश्चात् वे फिर अमरीका गये तथा वहाँ से पुनः लौटकर १५ अप्रैल सन् १८९६ को दूसरी बार इंग्लैण्ड आये एवं उनके आवेगपूर्ण कण्ठ-स्वर ने मार्गरेट के मन में एक तूफान खड़ा किया। उनका यह वाक्य "जगत में मात्र चरित्र की ही आवश्यकता है। विश्व मात्र ऐसे लोगों को चाहता है, जिनका जीवन ज्वलन्त, निष्काम-प्रेम की पूर्णाहुति-स्वरूप है। इसी प्रेम की शक्ति से प्रत्येक वाणी बज्र के समान कार्य की क्षमता रखती है। जागो-जागो महाप्राणों के धारक। सारा विश्व पीड़ा से जल भुन कर मृतप्राय हो रहा है। क्या तुम लोगों की निद्रा का यही अवसर है। "मार्गरेट के मन को एक नूतन जीवन प्राप्त हुआ एवं स्वामी जी के आह्वान पर अपने को समर्पित करने उद्यत हुई एवं यह विचार स्वामी जी के सम्मुख पत्र द्वारा रखी तथा स्वामी

* (इस लेख में स्वामी जी का तात्पर्य स्वामी विवेकानन्द से है।)

जी ने भी पत्र द्वारा लन्दन से लिखा था जिसका मुख्य अंश यहाँ देना उचित होगा।

६१ सेन्ट जार्जस रोड,
लन्दन ७ जून, १८९९

प्रिय मिस नोबल,

मेरे आदर्श को वस्तुतः अति संक्षेप में व्यक्त किया जा सकता है, और वह इस प्रकार है—मनुष्य के प्रति उनके अन्तर्निहित देवत्व का मार्ग निर्धारित कर देना होगा ..... तुम्हारे अन्दर जगत को उद्वेलित करने की शक्ति है, तथा धीरे-धीरे वह और भी प्रस्फुटित होगी। हमें चाहिये ज्वलंतमयी वाणी एव उससे अधिक ज्वलंत कर्म। हे महाप्राण उठो, जागो। जगत दुःख से दग्ध हो रहा है—क्या तुम्हें निद्रा शोभा देती हैं... । मैं किसी कार्य हेतु साधन की प्रतीक्षा नहीं करता अपने कार्य को करने की प्रेरणा रहने से कार्य प्रणाली अपने आप बन जाती है। उठो और जागो।

तुम्हें सदा-सर्वदा मेरा आशीर्वाद प्राप्त हो। इति।

शुभाशीर्वादक,
स्वामी विवेकानन्द

इस पत्र को पाकर स्तम्भित हुई तथा उन्हें अनुभव हुआ कि महान शक्ति-सम्पन्न महाप्राण जगत के महान कल्याण हेतु आविर्भूत हुए हैं। तत्पश्चात् मातृभूमि का आकर्षण एवं ऋषि के आह्वान में, द्वितीय को महीयसी मन ने स्वीकार कर पाश्चात्य धरती से चिरविदा लेकर प्राच्य की त्याग-भूमि को मन में संजोती हुई अपने महान युगाचार्य ऋषिप्राण स्वामी विवेकानन्द के निकट कलकत्ता बन्दरगाह पहुँची।

स्वामी जी ने उन्हें नियमित जप, ध्यान, शास्त्रपाठ इत्यादि के द्वारा उनकी चारित्रिक उन्नति पर दृष्टि रखकर सभी प्रकार से भारतीय सभ्यता, तथा रहन-सहन को गहन रूप से अवगत कराया। अपनी अग्निमयीवाणी से भारत के आध्यात्मिक तत्व समूह को एवं जिससे भारत माता के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा हो, उन्हें भी अपनी विशेष शिक्षा देते तथा भारत के प्रति जो भ्रान्त धारणायें थी, उन्हें भी अपनी कुशाग्र एवं तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा चूर्ण कर भारत के आदर्श को उनके सम्मुख बहुत ही सहज भाव से रखते थे। सन् १८९८ के २५ मार्च शुक्रवार का दिन मिस मार्गरेट एलीजाबेथ नोबल के लिये अविस्मरणीय के रूप में प्रकट हुआ। इसी दिन स्वामीजी ने उन्हें ब्रह्मचर्य व्रत में दीक्षित किया। वे अपने पूर्व संस्कारों के साथ-साथ पूर्व नाम को त्याग कर भारत के नारी जागरण एवं स्वामीजी की नारी उन्नति के कर्णधार के रूप में स्वामीजी के ही द्वारा भारतमाता को निवेदित कर "निवेदिता" के नाम से परिचित हुई। यह नाम परवर्ती समय में कितना उनके जीवन के साथ तादात्म हुआ, यह उनके कार्य एवं रचनाओं में स्पष्ट पाते हैं।

किन्तु इस अवस्था तक निवेदिता को गढ़ने में स्वामीजी को कितना तराशना पड़ा, यह भी अपने में एक विलक्षण है। एक दिन निवेदिता को ब्रह्मचर्य दीक्षा के पश्चात् पूछा था "अभी तुम अपने आपको किस जाति से सम्बद्ध समझती हो।" इसका उत्तर निवेदिता के पूर्व संस्कार व स्वजाति से अभीभूत था, ब्रिटिश जाति व ध्वज पर इनकी प्रगाढ़ भक्ति थी, जितनी कि हिन्दू नारी की अपने इष्ट पर होती है। स्वामीजी इस पर विस्मित से हो गये। उन्होंने सोचा निवेदिता को जिस कार्य के लिये भारतमाता को उत्सर्ग किया, उस हेतु अभी पूर्णरूपेण प्रस्तुत नहीं हुई। उन्होंने (स्वामीजी) निश्चय किया कि निवेदिता को मानसिक रूप से पूर्ण-रूपेण भारतमाता के प्रति, भारत की नारी जाति की उन्नति के प्रति सजग होने की शिक्षा प्रदान करनी होगी तभी कार्य पूर्ण होगा।

स्वामीजी को यह भी आभास था कि वे अब अधिक समय तक इस धराधाम में नहीं रहेंगे। यदि इसी प्रकार साधारण रूप से शिक्षा का क्रम चलता रहे तो बृहत समय व्यय करना होगा। कारण एक पूर्व संस्कारित संस्कार एवं मन को परिवर्तित करना वह भी विपरीत, बहुत ही कठिन होता है। उनमें स्वाभिमान आदि भी प्रतिरोध करता है। सच तो यह है कि यह एक कठिन कार्य है। तथा यह और कठिन होता है, जब दोनों परिवर्तित होने वाला एवं परिवर्तन करने वाला कुशाग्र, तीक्ष्ण एवं तार्किक हों। इस परिप्रेक्ष्य में निवेदिता को समझाते समय कभी-कभी गुरु-शिष्या में तर्कों की झड़ी लग जाती थी। एक दिन की घटना है स्वामीजी मुक्ति के विषय में कह रहे थे, इस पर निवेदिता ने अपना मत व्यक्त किया "हिन्दू इस जीवन से जिस प्रकार छुटकारा पाने की आकांक्षा करते हैं, वह मैं अनुभव नहीं कर पाती। मैं सोचती हूं, अपनी मुक्ति के प्रयास से अधिक जो महत् कार्य मेरे लिए बेहतर है उसी की सहायता के लिए पुनः जन्मग्रहण करना ही उचित है"।

इसके उत्तर में स्वामीजी ने कहा "इसका अर्थ है तुम क्रमविकास की धारणा पर विजय प्राप्त नहीं कर सकती। किन्तु, बाह्य जगत की कोई भी वस्तु अच्छी नहीं होती। वे जैसी है वैसी ही रहती है। उनको सुधारते-सुधारते हम लोग ही सुधर जाते हैं"। इस प्रकार प्रायः तर्क होता रहता था तथा निवेदिता के विचार में पाश्चात्य नारी सभ्यता, जिसमें स्वतन्त्रता एवं तर्क तथा कठोरता उन्हें प्रिय थी। भारती नारी की कोमलता एवं समर्पण भाव वह नारी जाति की उन्नति के लिए बाधक मानती थी। नारी स्वतन्त्रता को श्रेष्ठ समझती थी। इसी संदर्भ में स्वामीजी ने निवेदिता से कहा था "वास्तव में तुम्हारा जो स्वजाति से प्रेम है वह तो पाप है। मैं तो यही चाहता हूँ कि तुम यह धारणा करो कि, अधिकांश व्यक्ति ही स्वार्थ के वशीभूत हो कार्य करते हैं। किन्तु तुम इस सत्य को उलट कर प्रमाण करना चाहती हो, एक जाति विशेष के सभी देवता है। अज्ञात को इस प्रकार आग्रहपूर्वक विचार करना मन्दबुद्धि का परिचायक है"। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी जी निवेदिता के मन में मात्र जो पाश्चात्य भावना है उनसे उन्हें दूर कर विशाल बनाना चाहते हैं एवं इस कारण उन्होंने अपनी शिष्या के प्रति कठोरता भी अपनायी। कारण वे पूर्ण गुरु के रूप में अवतीर्ण हुए थे। वे किसी पर किसी मत को बलपूर्वक प्रेषित करने की प्रवृत्ति नहीं रखते थे वे चाहते थे निवेदिता के स्वभावजनित मन को मोड़कर उदार भूमि में लाना एवं जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि समयाभाव भी स्वामी जी के जीवन का पहलू था। अतः उन्होंने निवेदिता के मन के संकुचित विचार को अपनी कठोर एवं उदारवाणी व व्यवहार से निर्मूल करते समय यह नहीं जानना चाहते कि उनके श्रवण से शिष्या में क्या प्रभाव होता था अथवा मन ही मन क्या प्रतिक्रिया होती थी। किन्तु यह व्यवहार न कठोरता किसी दूसरे पाश्चात्य शिष्य व प्राच्य शिष्यों के प्रति नहीं करते थे वरन् यदि पाश्चात्य शिष्य व शिष्याओं में उनके अपने देश के प्रति प्रेम देखते थे, तो उससे प्रसन्न हो नहीं अपितु उसका उत्साहवर्धन भी करते थे। निवेदिता के विषय में उनकी ऋषि सदृश दृष्टि बिलकुल भिन्न थी। वे निवेदिता को संसार के सम्मुख एक अद्वितीय रूप से स्थापित देखते थे।

स्वामीजी के इस प्रकार के व्यवहार से निवेदिता का मन दिन-दिन उदास रहने लगा। मन विभिन्न प्रकार के आलोड़न से उद्वेलित होने लगा। मन में सदा एक धुआँ उठता रहता, वह सोचती, जिस पर भरोसा कर भारत आयी उन्हीं

का व्यवहार मेरे प्रति इतना कठोर, इतना उदासीन। जो एक स्वप्न संजोकर सर्वहारा होकर एक अतिप्रिय, अद्वितीय एवं देवदुर्लभ आचार्य के समीप जीवन के उच्चतम् आदर्शों की शिक्षा ग्रहण कर जीवन को धन्य करने आयी थी, वह सब किस तरह न जाने उलट रहा है। इसमें क्या कमी आ गई। यह सब निवेदिता के मस्तिष्क में कौंध रहा था।

उसका एक ही कारण था कि निवेदिता का अन्तरमन, अपने जातीय-संस्कार के अहंकार के कारण किसी विचार को सहज रूप में ग्रहण करने में असमर्थ होता। प्रत्येक विचार को प्रथम तर्क की कसौटी पर कसकर ही उसे स्वीकार करती थी। यदि इसी प्रकार की मन्थर गति से समर्पण चलता तो निवेदिता का जो रूप देखने को मिला वह नहीं मिलता। इधर टूटती हुई निवेदिता का अपने आप में एकाएक अलग करने जैसी कायरता को अपने चरित्र में स्थान देना असम्भव था। स्वामीजी के दीर्घदिन तक इस तरह उदासीन होना बहुत ही कष्ट कारक होने लगा। वे (स्वामी जी) चाहते थे निवेदिता स्वतन्त्र रहे, किसी पर आधारित न रहे, भारत के प्रति समर्पित हो, नारी जाति का आदर्श बने एवं उसे जाग्रत करे। यह भी सत्य है कि इतनी अधिक मानसिक संघर्ष निवेदिता जैसी उच्च आधार शिष्या के लिए ही सम्भव था। यह मानसिक संघर्ष कितना भी दुरूह रहा हो, परन्तु वे मन में जो सेवा का संकल्प लेकर पाश्चात्य जगत से चली थी, उससे विच्युत नहीं हुई तथा मन में ऐसा भी नहीं आया। जब वह चारों ओर से असहाय हो गयी तो अपने आप को रोक न सकी एवं अपने मन की व्यथा अपने गुरुभाई स्वामी स्वरूपानन्द जी को सजल नेत्रों से व्यक्त की। इस पर स्वामी स्वरूपानन्द जी ने उन्हें आध्यात्मिक विकास करने की सलाह दी तथा ध्यान करने को प्रेरित किया। तथा गीता का पाठ करते एवं उसका अर्थ समझाते। ज्यों-ज्यों वे इन सबमें रुचि लेकर आगे बढ़ने लगे त्यों-त्यों ध्यान आदि के रहस्य के जानने में सक्षम होती जाती तथा मन में एक अपूर्व शान्ति का अनुभव करने लगी। मन में जो पूर्वपोषित अहंकार था, उसका धीरे-धीरे उपशम होने लगा। साथ-साथ स्वामी स्वरूपानन्द के आध्यात्मिक उपदेश से हृदय आध्यात्मिक अनुभूति से सम्पन्न होने लगा। नित्य गीता पाठ एवं विभिन्न शास्त्र अध्ययन से उनके अन्तर में भारतीय धर्म दर्शन के प्रति सहृदयता जागी। उपरोक्त भावों को पूर्णरूपेण हृदयंगम कर मन देवदुर्लभ गुरु के चरणों में समर्पित होने के लिये प्रस्तुत होने लगा। इसे वह अपनी सहेली व गुरुभगिनी कु० मैक्लाउड को बताया करती थी। कु० मैक्लाउड भी गुरु के इस व्यवहार से चिंतित रहती एवं किस प्रकार इसे व्यक्त किया जाय यह सोचती रहती थी। एक दिन निवेदिता की इस उपेक्षाजनित पीड़ा को सहन न कर सुबह जब स्वामीजी से भेंट हुई तो उन्होंने (कु० मैक्लाउड) निवेदिता के मन की अवस्था का वर्णन किया तथा उनके प्रति इस प्रकार के दण्ड से मुक्ति हेतु प्रार्थना की। स्वामीजी ने चुपचाप सुना एवं उस पर कुछ भी प्रतिक्रिया व्यक्त न कर अपने कमरे में चले गये।

उसी दिन सन्ध्या को प्रकृति एक मनोरम दृश्य से सुसज्जित थी। उस समय का अलमोड़ा, घर के बरामदे में कु० मैक्लाउड व निवेदिता कुर्सी पर बैठी उन दृश्यों को निहार रही थी। निवेदिता के मन में झंझाबात बह रहा था। चारों ओर शान्त वातावरण परन्तु निवेदिता बोझिल। कु० मैक्लाउड इससे पूर्णरूपेण परिचित थी। इसका कुछ अवसान उस महामानव को देख कर अवश्य होता; किन्तु वह भी क्षणिक। इसी समय स्वामी जी कमरे से निकले, बरामदे में आये तथा कुछ

समय खड़े होकर बाहर का दृश्य देखते हुए बालकवत् स्वभाव से बोले "तुम्हारी ही बात सत्य है। इस अवस्था का परिवर्तन भी आवश्यक है। मैं अकेला ही वन में जा रहा हूँ, निर्जनवास की इच्छा से। जब वापस आऊँगा तो, शान्ति लेकर ही लौटूँगा।" इसके बाद स्वामीजी ने आकाश की ओर दृष्टि डाली एवं द्वितीया के बालचन्द्र को देखकर दिव्यभाव में आवेशित होकर बोले "देखो, मुसलमान दूज के चाँद को विशेष सम्मान के साथ देखते हैं। आओ हमलोग इसी नवीन चन्द्र के साथ नवजीवन प्रारंभ करें" यह कहकर उन्होंने अपने दोनों हाथ उठाये एवं अभिवादन करने लगे। उसी क्षण निवेदिता गम्भीर आवेश से परिपूर्ण हो स्वयं को स्वामीजी के चरणों में समर्पित कर दी। स्वामीजी ने अपनी इस मानसपुत्री के सिर पर हाथ फेरकर दिव्यभाव से पूर्ण हृदय के अन्तस्तल से प्राण भर कर आशीर्वाद प्रदान किये। आज गुरु के इस दिव्य स्पर्श के महत्व को हृदय के एक-एक स्नायु से अनुभव कर जीवन को धन्य किया। उनके हृदय की अशान्त-विराट एवं भयावह आँधी, द्वंद्व व संघर्ष का पूर्ण अवसान हुआ एवं नूतन जीवन दिव्य भाव से परिपूर्ण हो गया। उसके पश्चात् शाम को जब ध्यान में बैठी तो अध्यात्म के उस रहस्य को अनुभव कर धन्य हुई, जिसे योगियों को वर्षों की गहन चेष्टा के उपरान्त शायद प्राप्त होता है। इस तरह निवेदिता ने जो सुना था "ठाकुर श्री रामकृष्ण देव ने एक बार कहा था" नरेन्द्र में स्पर्श मात्र से ज्ञानदान करने की शक्ति, जो बचपन से है, वह विकसित होगी" तथा आज उन्हें अपने गुरु के श्रेष्ठत्व का ज्ञान हुआ तथा महामानव के आचरण के विषय में ज्ञात हुआ कि इसके सब कार्य व भाव अलौकिक होते हैं।

हम देखते हैं कि निवेदिता के गढ़ने में स्वामीजी ही समर्थ थे। कारण उच्च आधार को गढ़ने के लिए भी उच्च आधार की आवश्यकता होती है। आज हम जिस निवेदिता पर इतना गर्व करते हैं उसे यह रूप देने में मात्र स्वामी विवेकानन्द ही सक्षम थे। परवर्ती समय में जो कार्य उन्होंने भारत के नारी जागरण के लिए किया, भारत माता की आजादी के लिए क्रान्तिकारियों को जिस तरह प्रेरित किया एवं स्वयं ने भी जो भूमिका निभायी एवं सर जगदीश चन्द्र बोस के वैज्ञानिक-आविष्कार में जो उत्साह दिलाया तथा विषम प्लेग जैसी महामारी में झाड़ू व टोकरी लेकर रास्ते व नाली साफ करना और रोगियों की सेवा करना—इन समस्त कार्यों में स्वामीजी की प्रतिध्वनि थी। ठाकुर ने स्वामीजी के विषय में एक बार कहा था, "नरेन्द्र को बचपन में सिर पर चोट के द्वारा रक्त न निकलता तो पृथ्वी को उलट-पुलट देता।" यह हम अक्षरशः सत्य पाते हैं। अतः अन्त में इन पंक्तियों के साथ समाप्त करते हैं कि जिस तरह ठाकुर श्रीरामकृष्ण देव ने नरेन्द्र को मिट्टी के लोंदे की तरह गढ़कर स्वामी विवेकानन्द बनाया था, ठीक उसी तरह स्वामीजी ने मिस मार्गरेट एलिजाबेथ नोवल को हीरे की तरह तराश कर भगिनी निवेदिता बनाकर ऋषि-परम्परा को जाग्रत रखा।

सदर्भित ग्रन्थ—भगिनी निवेदिता
ले० प्रव्राजिका मुक्तिप्राण।

सचमुच ठाकुर ईश्वर ही थे। उन्होंने दूसरों के दुःखों और कष्टों को दूर करने के लिए मानवी देह धारण की थी। वे वैसे ही रहे जैसे एक राजा अपने नगर में वेश बदलकर घूमता है। जैसे ही लोगों ने पहचाना वैसे ही वे अदृश्य हो गये।

—माँ सारदा

आदिवासी क्षेत्रों में राम कृष्ण मिशन का कार्य

—ग्राडजवंर

अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द

[स्वामी विदेहात्मानन्द रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में सम्प्रति कार्यरत हैं एवं आश्रम से प्रकाशित पत्रिका 'विवेक ज्योति' के सम्पादक हैं।—सं०]

हमारे भूतपूर्व प्रधानमंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू ने एक बार कहा था कि रामकृष्ण मिशन बिना किसी विज्ञापनबाजी अथवा धूम धाम के चुपचाप काम किये जाता है। पण्डितजी ने मिशन की मौन कार्य-कुशलता की प्रशंसा की और आडम्बरहीन संन्यासियों द्वारा परिचालित मिशन भी प्रसिद्धि की चकाचौंध से दूर ही रहना चाहता है। परन्तु प्रचार के इस युग में जनता यह जानना चाहती है कि कोई संस्था-विशेष अपने संकलित संसाधनों को किस प्रकार व्यय करती है। यदि प्रचार की उपेक्षा की गयी तो बहुधा लोग भ्रान्त धारणा बना लेते हैं कि यह संगठन कुछ भी नहीं कर रहा है और उसी परिमाण में लोगों के सहयोग की मात्रा भी घट सकती है। अतः आज के युग में अपने जनहितकर तथा सेवा-कार्य में प्रभावी होने के लिए, एक संस्था को, अनिच्छा पूर्वक ही सही, अपने क्रियाकलापों का लेखा-जोखा देना पड़ता है।

काफी लोगों को इस उक्ति की सत्यता एक प्रत्यक्ष उदाहरण के द्वारा समझ में आ जाएगी। कुछ लोगों के मन में एक निराधार धारणा हो गयी है कि रामकृष्ण मठ और मिशन केवल शहरी क्षेत्रों में और वह भी सिर्फ मध्यवर्गीय लोगों के बीच कार्यरत है। यह धारणा पूर्णतः गलत है। परन्तु हम यहाँ इस विषय पर विस्तार से चर्चा नहीं करने जा रहे हैं, वरन् इसके एक विशेष अंश पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे और वह है—आदिवासियों के बीच मठ और मिशन का कार्य।

कुछ महीनों पूर्व वर्तमान लेखक को नेफा* के सियांग डिवीजन के मुख्यालय अलांग जाने का अवसर मिला था। यह स्थान भारत, वर्मा और चीन के प्रायः मिलनविन्दु पर स्थित है। अलांग से कई मील पूर्व एक गहरी घाटी में विशाल एवं पूतनद ब्रह्मपुत्र का शुभ्र जल प्रवाहित होता है जिसे स्थानीय भाषा में सियांग के नाम से जानते हैं। इस नद के नाम पर ही इस डिवीजन का नामकरण हुआ है। नेफा के अन्य डिवीजनों के नाम भी उनसे होकर अथवा उनकी सीमा से लगकर बहने वाली नदियों के नाम पर रखा गया है—कामेङ्, सुबन्सिरी लोहित और तिराप। अलांग पूर्वी हिमालय की गोद में काफी भीतर बसा हुआ है, जहाँ से लगभग १५० किलोमीटर दूर उत्तरी सीमान्त रेलवे का निकटतम रेलवे स्टेशन शिलापाथर है। यह लघु कस्बा अलांग के साथ एक अच्छी पहाड़ी सड़क से जुड़ा हुआ है। शिलापाथर से कोई १०० किलोमीटर पूर्व में लीलाबारी (अब लखीमपुर) का हवाई अड्डा है, जहाँ से एक अच्छी सड़क ब्रह्मपुत्र के समानान्तर लीलाबारी की निचली पहाड़ियों तक चली आयी है। लीलाबारी के निकट की एक पहाड़ी पर एक मन्दिर के भग्नावशेष मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि कभी इन पर्वतीय लोगों का मैदानी अंचल के लोगों से बड़ा अन्तरंग सांस्कृतिक

* सम्प्रति 'अरुणाचल प्रदेश' के नाम से इसे भारत के एक पूरे राज्य का दर्जा दिया जा चुका है।—(अनु०)

सम्बन्ध रहा होगा। वहाँ बिखरे सुन्दर खुदाई से युक्त शिलाखण्ड उक्त भूतपूर्व देवालय की भव्यता की गवाही देते हैं, जिसमें कभी दुर्गादेवी की मूर्ति प्रतिष्ठित थी। उस दशभुजा मूर्ति का सिर भग्न हो चुका है पर बाकी सब ठीक है। स्थानीय लोगों में वे मालिनी के नाम से सुपरिचित हैं। ब्रिटिश शासन के दिनों में मैदानी भाग के लोगों का इन पहाड़ों में आना निषिद्ध था, अतः पिछली अनेक शताब्दियों से उनका भारतीय संस्कृति से सम्पर्क टूट गया है। यहाँ के आदिवासी सूर्य और चन्द्रमा इन दो देवताओं पर आधारित सांस्कृतिक संरचना के अनुसार अपना अलग-अलग जीवन बिताते रहे हैं। अंग्रेज तथा भारतीय दोनों ही उन्हें समान रूप से विजातीय प्रतीत होते थे, अतः वे दोनों से ही दूर रहे। परन्तु इस शताब्दी के छठे दशक से और विशेषकर चीनी आक्रमण के बाद से हालत में सुधार हुआ है। अब वहाँ चारों ओर प्रगति के वेग को बढ़ाने के लिए तथा आदिवासियों को आधुनिक सभ्यता के प्रकाश में लाने के लिए सरकार भी काफी व्यय कर रही है। बाह्य जगत् के साथ इन लोगों का सम्पर्क जोड़ने में रामकृष्ण मिशन का योगदान भी कम नहीं रहा है।

१९६६ ई० में रामकृष्ण मिशन ने आदिवासी बालक एवं बालिकाओं के लिए अलांग कस्बे के निकट एक आवासीय प्राथमिक विद्यालय प्रारम्भ किया। यहाँ अध्ययन करने वाले सभी विद्यार्थी स्कूल परिसर में ही बाँस तथा अन्य स्थानीय चीजों से बनी झोपड़ियों में निवास करते थे। विद्यालय का भवन भी इसी पैटर्न पर बना था। आदिवासी लोग अंग्रेजी भी सीखना चाहते थे और उस अंचल में यही एकमात्र ऐसा स्कूल है जो एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के माध्यम से सुविस्तृत विश्व के साथ उन्हें अधिकाधिक सम्पर्क प्रदान कर सकता था। आदिवासी लोग ज्ञान तथा आत्माभिव्यक्ति के लिए उत्सुक थे और उनके बच्चे भी काफी बुद्धिमान थे। उस प्रदेश में जन-संख्या का घनत्व काफी कम है—चार व्यक्ति प्रति वर्गमील है। अतः विद्यार्थी दूर-दूर के गाँवों से आये। इस कारण विद्यालय को आवासीय बनाना पड़ा परन्तु इसके फलस्वरूप मिशन को उनके घनिष्ठ सम्पर्क में आकर उनकी आकांक्षाओं के साथ एकात्म होने का भी अवसर मिला। उन लोगों ने भी मिशन का हार्दिक स्वागत किया, आवश्यकतानुसार जगह दी, स्कूल तथा अपने बच्चों के आवास हेतु कुटीरों का निर्माण किया और सभी प्रकार से इस योजना में सहायक हुए। मिशन के संन्यासियों ने भी उनके कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य किया और इस तरह उनके हृदय पर विजय पा ली। भारत सरकार ने भी उदारतापूर्वक आर्थिक तथा अन्य प्रकार से मिशन की सहायता की। और इस प्रकार अलांग के इतिहास का वह महत्वपूर्णक दिन आया जब ६ दिसम्बर १९६९ ई० को भारत के तत्कालीन गृहमंत्री श्री यशवन्तराव चव्हाण ने लगभग ५४ लाख रुपयों की लागत से निर्मित मिशन के नये स्कूल तथा छात्रावास के भवनों का उद्घाटन किया।

उस दिन वहाँ पर एक महा उत्सव का दृश्य उपस्थित हो गया था। आदिवासी लोगों ने उस स्थान को द्वार, तोरण, वन्दनवार तथा पताकाओं से सजाने के लिए और सभा के हेतु एक मंच बनाने के लिए दिन रात परिश्रम किया। सब कुछ आदिवासी परम्परा के अनुसार ही बाँस तथा खर पतवार से निर्मित हुआ था। इस अवसर को बड़ा महत्व दिया गया था और इस समारोह में भाग लेने को गृहमंत्री सुदूर दिल्ली से विमान में आये और उनके साथ शिलांग से राज्यपाल श्री बी०के० नेहरू तथा नेफा प्रशासन के अनेक अधिकारी भी आये। रामकृष्ण मिशन के महासचिव ने सभा की अध्यक्षता की। मुख्य अतिथि के रूप में पहले

राज्यपाल का व्याख्यान हुआ और तत्पश्चात् गृहमंत्री ने एक सुन्दर भाषण दिया। कुछ आदिवासी नेता भी हिन्दी में बोले और अन्त में मिशन के महासचिव ने उन आदर्शों एवं विचारों पर प्रकाश डाला, जिन्हें रामकृष्ण मिशन आदिवासी लोगों के बीच कार्यान्वित करना चाहता है।

महासचिव स्वामी जी ने सभा को बताया कि श्री रामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द ने मानव में निहित दिव्यता को अभिव्यक्त कर मानव के गौरव को उन्नीत कर दिया है। उन्होंने अपने अनुयाइयों को आह्वान किया है कि वे लोग अपनी आध्यात्मिक प्रगति के लिए इस दिव्यत्व की पूजा करें। फिर स्वामी विवेकानन्द ने अन्य लोगों के दृष्टिकोण तथा संस्कृति को न केवल सहन वरन् सम्मानित करने का निर्देश दिया है। अत: मिशन सेवारूपी पूजा का भाव लेकर आदिवासियों में जाता है और बिना किसी निन्दावाद को प्रश्रय दिये उनकी निजी प्रतिभा को बढ़ावा देता है। उनकी सांस्कृतिक परम्परा से प्रेम किया जाता है, रक्षा की जाती है और पूरी श्रद्धा के साथ उनके देवताओं की पूजा की जाती है; इसके अतिरिक्त मिशन बाहर से भी ज्ञान का आनयन करता है। मिशन के माध्यम से ये लोग मैदानी अंचल की संस्कृतियों का परिचय पाते हैं। उन्हें स्वाधीनता दी जाती है कि वे स्वयं इनका मूल्यांकन करें और जितना उचित लगे उसे अपना कर आत्मसात् कर लें।

मिशन को अपने कार्य में सफलता मिली है और आदिवासी लोग उत्सुकतापूर्वक चाहते हैं कि यह कार्य नेफा के अन्य भागों में भी फैले। नेफा का प्रशासन भी इस विषय में समान रूप से उत्साही है। अत: संन्यासी कर्मियों की सीमित संख्या के बावजूद इसके परवर्ती वर्ष ही मिशन को नेफा को पूर्वी डिवीजन तिराप में भी ऐसा ही एक केन्द्र आरम्भ करना पड़ा।*

नेफा से विदा लेकर अब हम भी खासी पहाड़ियों की ओर चलते हैं जो अब भी अत्यन्त पिछड़े आदिवासी लोगों की निवासभूमि मानी जाती है, परन्तु वास्तविकता तो यह है कि खासी जनजाति के लोग अब सांस्कृतिक तथा बौद्धिक दृष्टि से काफी उन्नत हो चुके हैं और ये लोग सहजता से भारत के अन्य भाग के निवासियों के साथ समानता का दावा कर सकते हैं, तथापि कई कारणवश इन्हें आदिवासी अंचल कहना ही अधिक समीचीन होगा।

लगभग आधी शताब्दी पूर्व मिशन ने इन पहाड़ियों में कार्य आरम्भ किया और विदेशी शासन के विद्वेष तथा मिशनरियों की प्रतिद्वन्द्विता के बीच से शनैः शनैः अपना पथ प्रशस्त किया। अब खासी पहाड़ी के प्राय: पूरे दक्षिणी भाग में इसका कार्य दृढ़मूल हो चुका है। इस कार्य का संचालन चेरापुंजी में स्थित मिशन के एक तीव्र गति से विकासमान ग्रामीण केन्द्र से होता है।

चेरापुंजी काफी काल से भारी वर्षा के लिए विख्यात रहा है और अब एक सीमेंट उद्योग तथा ईसाई मिशनरियों द्वारा आयोजित विविध प्रकार के क्रियाकलापों के लिए प्रसिद्ध है। वहाँ रामकृष्ण मिशन का एक उच्च विद्यालय तथा विद्यार्थियों के लिए छात्रावास है। इस चेरापुंजी केन्द्र के अधीन २१ माध्यमिक अंग्रेजी विद्यालय तथा २७ प्राथमिक शालाएँ चलती हैं।

---

*सम्प्रति अरुणाचल प्रदेश में एक तीसरा केन्द्र भी शुरू किया गया है। प्रदेश की राजधानी ईटानगर में मिशन ने १९७९ ई० में एक अस्पताल का निर्माण किया है, जिसमें इस समय १०० बिस्तर हैं।—(अनु)

मिशन ने राष्ट्र के लिए आदिवासी लोगों का दिल जीत लिया है। अब वे लोग सोचते हैं कि भारतवासियों के हाथ में उनके हित सुरक्षित हैं, और भारत के साथ मेल जोल रखने पर भी उनके अपने धर्म एवं संस्कृति के लुप्त होने का भय नहीं। इसके साथ ही वे यह जानकर भी निश्चिन्त हैं कि उन्हें अपने देशवासियों के बीच अधिकाधिक सम्मान मिलेगा और एक उच्चतर जीवन स्तर तथा आत्म-अभिव्यक्ति के लिए भी प्रचुर अवसर प्राप्त होगा।

□

संत कथा

जिन्होंने ईश्वर भक्ति का मार्ग प्रेम बताया

—प्रभात कुमार सिन्हा

भारत में सूफी सम्प्रदाय की विभिन्न शाखाओं में 'चिश्ती' शाखा अत्यत ही लोकप्रिय सिद्ध हुई है। चिश्ती सम्प्रदाय के मूल प्रवर्तक ख्वाजा अब्बू अब्दुल्ला थे किन्तु भारत में इसका सर्वप्रथम प्रचार करने वाले 'ख्वाजा मुइनउद्दीन चिश्ती थे। इसी चिश्ती सम्प्रदाय के एक और महान् सूफी संत थे शेख निजामुद्दीन औलिया। निजामुद्दीन औलिया ऐसे महान् सन्त थे जिन्होंने अपने जीवन काल में सात शासकों को दिल्ली के राजसिंहासन पर देखा, परन्तु वे कभी किसी शासक के दरवार में नहीं गये और हमेशा ईश्वर भक्ति में लीन रहे।

बाबा फरीद के मुख्य शिष्य निजामुद्दीन औलिया का जन्म बदायूं में १२३६ ई. में हुआ था। जब ये पांच वर्ष के थे तो इनके पिता की मृत्यु हो गयी थी और इनका लालन-पालन माँ ने किया, जो कि साध्वी महिला थी। २० वर्ष की अवस्था में निजामुद्दीन साहब अजोधन गये और बाबा फरीद के शिष्य बन गये। १२५८ में ये दिल्ली चले आये और इन्हीं के प्रभाव से दिल्ली लगभग साठ वर्षों तक सूफी मत का केन्द्र बना रहा। कुछ वर्षों के बाद ये दिल्ली से दूर गियासपुर चले गये, जहाँ इनके एक शिष्य ने उनके लिए खनकाह बनवा दिया।

निजामुद्दीन औलिया का मानना था कि यह सूफी की प्रतिष्ठा के विरुद्ध है कि वह किसी शासक के दरबार में जाये। फिर भी सुल्तान जलालुद्दीन खिलजी ने उनसे अपने दरबार में आने का आग्रह किया तथा उनके प्रमुख शिष्य 'अमीर खुसरो' की सहायता ली पर वे निजामुद्दीन औलिया को बुलाने में असफल रहे। इसके बाद वे अजोधन चले गये। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी जब गद्दी पर बैठा तो वह स्वयं शेख औलिया

साहब से मिलना चाहा, तब उन्होंने खबर भिजवायी, "मेरे घर के दो दरवाजे हैं, यदि सुल्तान दरवाजे से आयें तो मैं दूसरे दरवाजे से निकल जाऊंगा।"

बाबा फरीद ने ही अपने शिष्य निजामुद्दीन औलिया को यह शिक्षा दी थी कि राजा और अमीरों से दूर रहना। इनकी संगत का बुरा परिणाम होता है। क्योंकि सूफी पंथ का उद्देश्य आत्मा को सभी तरह के भोगों से मुक्त रखना है। इसलिए जब अलाउद्दीन के पुत्र एवं उत्तराधिकारी मुबारक शाह ने चाहा कि शेख औलिया अन्य संतों की तरह उसके दरबार में आयें तो उन्होंने कहला भेजा कि यह उनके धर्म के विरूद्ध है। उनकी उदार प्रवृत्ति एवं संगीत प्रेम से चिढ़कर सुन्नियों ने सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक का ध्यान आकृष्ट किया। निजामुद्दीन औलिया ने स्वयं एक कट्टर सुन्नी होते हुए भी इस विषय के सम्बन्ध में एक सभा बुलाई। काफी विचार-विमर्श के बाद यह निष्कर्ष निकला कि संगीत सुनना नियम विरुद्ध नहीं है। इससे सुल्तान और जलभुन गया।

सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक का पुत्र (उलूग खाँ) जो आगे चलकर मुहम्मद बिन तुगलक के नाम से गद्दी पर बैठा, वह भी निजामुद्दीन औलिया का शिष्य बन गया था। अतः सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक ने चिढ़कर बंगाल से लौटते समय औलिया को आदेश दिया कि वह उसके दिल्ली पहुँचने से पूर्व गयासपुर को खाली कर दे। इस पर निजामुद्दीन औलिया ने उत्तर दिया कि 'अभी दिल्ली दूर है। संयोग की बात है कि गियासुद्दीन तुगलक की मृत्यु दिल्ली पहुँचने से पूर्व ही हो गयी और निजामुद्दीन औलिया गियासपुर में ही रहे। उनकी मृत्यु १३२५ में हो गयी।

चिश्ती सम्प्रदाय के सूफी संत निजामुद्दीन औलिया ने अपने पवित्र जीवन तथा परमात्मा के प्रेमी के रूप में अत्यन्त ख्याति पायी। उनके व्यक्तित्व एवं धार्मिक भावनाओं के कारण चिश्ती सम्प्रदाय भारत में सर्वाधिक लोकप्रिय हो गया।

निजामुद्दीन औलिया के उपदेशों का मूल आधार प्रेम था। उनका कथन था कि प्रेम द्वारा ही ईश्वर प्राप्ति संभव हो सकेगा। उनका यह भी कहना था कि मनुष्य की सहायता ही कयामत के दिन काम आएगी और कुछ नहीं देखा जायेगा। वे मानवीय सहिष्णुता को दो प्रकार का मानते थे। आवश्यक: इसके अन्तर्गत दूसरों के लिए प्रार्थना, व्रत तथा तीर्थ इत्यादि करना था। प्रकाशित करने योग्य: इसके अन्तर्गत दूसरों के प्रति भलाई करना होता है। अर्थात मानवता के प्रति प्रेम उनका प्रमुख सिद्धांत था। वे अत्यन्त उदार व्यक्ति थे। उनका कथन था—हे मुसलमानों। मैं अल्लाह की कसम खाकर कहता हूँ कि वह उन्हें प्रसन्न रखता है जो मानव जाति के उससे (अल्लाह से) प्रेम करते हैं तथा वे लोग भी जो उसके लिए मानव जाति से प्रेम करते हैं। ईश्वर से प्रेम तथा आराधना करने का यही एकमात्र मार्ग है।

शेख निजामुद्दीन औलिया ने हिन्दू और मुसलमानों को एक समझा और उनको समान रूप से उपदेश दिये। उनके प्रसिद्ध शिष्यों में अमीर खुसरो, मुहम्मद बिन तुगलक, अमीर हसन देहलवी, शेख सिराजुद्दीन उस्मानी थे। १३२५ में उनकी मृत्यु के बाद उनकी समाधि पर प्रतिवर्ष मेला आयोजित किया जाता है।

श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम

रामकृष्ण निलयम, जयप्रकाश नगर

छपरा-८४१ ३०१ (बिहार)

दूरभाष : 06152-22639

स्वामी विवेकानन्द प्रतिमा-स्थापन

नम्र निवेदन

प्रिय महोदय/महोदया,

आपको यह सूचित करते हुए हमें परम प्रसन्नता हो रही है कि पश्चिमी जगत में भारतीय धर्म और अध्यात्म की विजय पताका लहराने के उपरान्त दिग्विजयी स्वामी विवेकानन्द के भारत प्रत्यागमन के शताब्दी-महोत्सव वर्ष की स्मृति में स्वामी विवेकानन्द की आदमकद कांस्य-प्रतिमा की स्थापना करने का शुभ संकल्प छपरा के नागरिकों ने लिया है। छपरा स्वामीजी के गुरुभाई स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) के जन्म-जिला का मुख्यालय है।

मनुष्य-निर्माण, चरित्रगठन, सामाजिक न्याय, सर्वधर्म समभाव एवं भारत के पुनर्निर्माण के सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द की प्रतिमा एक विद्युत-तरंग का कार्य करेगी एवं वर्तमान पीढ़ी के लिए प्रेरणा का प्रकाशपुंज सिद्ध होगी—यह निर्विवाद है।

अतएव, आपसे हमारा नम्र निवेदन है कि इस याज्ञिक कार्य में उदारतापूर्वक दान देकर हमारे विनम्र प्रयास का सहभागी बनने की कृपा करें। इस महनीय कार्य में बड़े से बड़ा दान भी अल्प है और छोटे से छोटा दान भी महत्तम है।

स्वामीजी की कृपा आप पर निरन्तर बरसे—यही प्रार्थना है।

प्रेम और शुभकामनाओं सहित—

स्वामी विवेकानन्द चरणाश्रित

आपका

(डॉ० केदारनाथ लाभ)

सचिव

चेक या ड्राफ्ट रामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम, छपरा (बिहार) के नाम से भेजने की कृपा करें। नकद रुपये मनीआर्डर से भेजे जा सकते हैं।

एक निवेदन

भगवान श्री रामकृष्णदेव, माँ सारदा तथा स्वामी विवेकानन्द के चरण रेणु से तीर्थीकृत तथा स्वामी विवेकानन्द स्मृतिविजड़ित आकर्षण केन्द्र ज्योति लिंग बाबा वैद्यनाथ की इस पुनीत नगरी देवघर में रामकृष्ण संघ द्वारा परिचालित प्रथम शिक्षण संस्थान रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ की स्थापना सन् 1922 में हुई। भगवान श्री रामकृष्ण देव के अन्यतम पार्षद श्रीमत् स्वामी तुरीयानन्दजी महाराज से अनुप्राणित तथा स्वामी विवेकानन्द के शिक्षादर्शों पर आधारित 75 वर्ष पूर्व प्रारम्भ की गई यह शिक्षण संस्थान आज पूरे भारतवर्ष में विख्यात है। रामकृष्ण संघ के द्वितीय अध्यक्ष परमपूजनीय श्रीमत्स्वामी शिवानन्दजी महाराज ने भविष्यवाणी की थी—'इस विद्यापीठ के माध्यम से भविष्य में बहुत महान कार्य सम्पन्न होगा, इसका भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल है।'

विद्यापीठ के बहुमुखी कर्म-प्रवाह में आर्थिक अवस्था से विपन्न 400 छात्रों के लिए आज 'विवेकानन्द बालकेन्द्र' मुख्य इकाई के रूप में कार्यरत है जिसमें नि:शुल्क शैक्षिक तथा क्रीड़ा संबंधी एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था है। इस अनुन्नत वर्ग को ही नवीन भारत का आधार बनाते हुए स्वामीजी ने कहा था—

"एक नवीन भारत निकल पड़े। निकले हल पकड़कर, किसानों की कुटी भेदकर, मछुए, माली, मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से। निकल पड़े बनियों की दुकान से, भुजवा के भाड़ से, कारखाने से, हाट से, बाजार से। निकले झाड़ियों से, पहाड़ों—पर्वतों को भेदते हुए।' इस वाणी को मद्देनजर रखते हुए 'सबसे पीछे पड़े हुए, सबसे नीचे दबे हुए' वर्ग को अपने विनम्र भाव से शिक्षित करने के प्रयास में 'विवेकानन्द बाल केन्द्र' अनवरत संलग्न है।

संप्रति इन छात्रों की यथोक्त शिक्षा के लिए एक स्थायी भवन की नितान्त आवश्यकता है जिसकी अनुमानित लागत 10 लाख रुपये है। अतः रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर की ओर से मैं इस महान एवं पवित्र कार्य को सम्पन्न करने के लिए आप उदारचेताओं से सहयोग की महती प्रार्थना करता हूँ। इति।

निवेदक

स्वामी सुवीरानन्द

सचिव

रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर

नोट :—1. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर के नाम से ही चेक या ड्राफ्ट भेजे जाएं।

2. रामकृष्ण मिशन को दिया गया दान धारा 80 [G] के अनुसार आयकर मुक्त है।

डाक पंजीयित संख्या - सी.एच.पी.
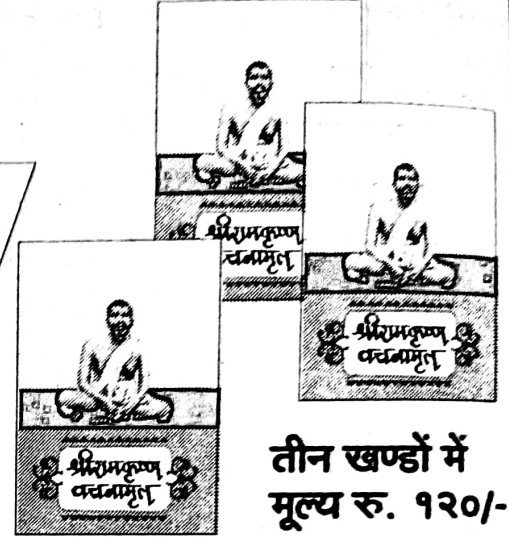
श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं शिवशक्ति प्रिन्टर्स, सैदपुर, पटना-४ में मुद्रित।